उच्छ्वास

- कृष्णा गुप्ता

उच्छ्वास

कृष्णा गुप्ता

तरुण प्रकाशन, जम्मू

UCHHWAAS
Hindi Poems
by
Krishna Gupta

- तरुण प्रकाशन, जम्मू।
- मूल्य : 100/- केवल।

- द्वितीय संस्करण 2009
- मुद्रक : नमन प्रकाशन, लखनऊ ☎ 09415094950

प्राप्ति स्थान :
26, B/B-गांधी नगर, जम्मू-180004

भूमिका
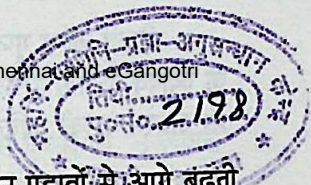
हिन्दी-कविता अपनी विकास-यात्रा के विभिन्न पड़ावों से आगे बढ़ती हुई एक चक्र पूरा कर रही है। धार्मिक अनुष्ठानों में गाए जाने वाले चमत्कारक पदों से आरम्भ होकर कविता धर्म से पूरी तरह निःसंग होकर आगे बढ़ी और आज की अधिकांश कविता उन स्थूल धारणाओं को नकारने लगी है जिनके सहारे धर्म का ढांचा खड़ा रहता है। इसके बावजूद आज का कवि उस प्रभविष्णुता को प्राप्त करना चाहता है जो उस अनुष्ठानात्मक कविता को प्राप्त था। 'आवाज में असर के लिए बेकरार' कवि शिल्प के धरातल पर अनेक प्रयोग करता है। राजीव सक्सेना ने अपनी कविताओं के विषय में लिखा था, "मैं अक्सर अपनी कविताओं को गीत कहता हूँ तो इसलिए कि मैं उनमें वह जादुई तत्व पैदा करना चाहता हूँ जो आदिम कविता में था।"

कविता के विकास का यह चक्र एक और तरह से भी पूरा हो रहा है। छन्दों से मुक्ति की चाह करने वाला कवि पुनः यह सोचने के लिए मजबूर होने लगा है कि छन्द सर्वथा ऐसी बाधक वस्तु नहीं है जो अभिव्यक्ति पर लगाम दे।

अभिव्यक्ति को कविता की संज्ञा मिले, उसके लिए आवश्यक है कि कवि वाह्य अनुभव का आत्मसाक्षात्कार करे। कवि को दो भट्टियों में जलना होता है। प्रथमतः, उसे अनुभूति के बाहरी पक्ष को सारी कडुआहट और दर्दीले दंश के साथ भोगना होता है और उसके बाद कई गुणा ज्यादा ताप वाली आंतरिक भट्ठी में इन अनुभूतियों का सम्मिश्रम होता है। कवि कुछ का कुछ हो जाता है। मुक्तिबोध इसी प्रक्रिया को व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया कहते हैं। जो व्यक्ति इस प्रक्रिया से नहीं गुजरा है, उसे कवि कहलाने का कोई हक नहीं। उसकी 'कविता' तथ्यों की एक सूची बनकर रह जाती है।

श्रीमती कृष्णा गुप्ता के पास एक नारी का कोमल हृदय है। वह जीवन के व्यापक फलक पर जो कुछ देखती हैं, उसे शब्द देने का प्रयत्न करती है। अक्सर उनकी कविता दार्शनिकता की ऊंचाइयां छूने लगती है।

जीव महाज्ञानों का ग्रन्थ है,
चलता-फिरता एक ब्रह्माण्ड।

बहुत-सी जगह महसूस होता है कि छन्द कमजोर पड़ गये है और लेखिका आगे निकल गयी है। फिर भी उन्हें छन्दयुक्त कविता ही प्रिय है। कुछ गीतों में शब्द और भाव का प्रवाह देखते ही बनता है। जहां लेखिका को अपनी सहज भावनाओं का क्षेत्र मिला है, वहां शब्द और भाव का समन्वय सुन्दर बन पड़ा है।

निशा-तम लटों का झुलाती है पलना,
किरण चल ठुमक-ठुम सिखाती है चलना।
कोई ओस-कण पी कली फूटती है,
उसी रूप की मुग्धता रश्मि मैं हूँ।

श्रीमती कृष्णा गुप्ता जम्मू की मिट्टी की ही उपज हैं। उनकी अधिकांश कविताएं लखनऊ, इन्दौर तथा जम्मू में लिखी गईं। साहित्य और साहित्यिक आलोचना की आज जो स्थिति है, उसे देखते हुए कवयित्री के विषय में, उन्हीं के शब्दों में बस इतना ही कहा जा सकता है :-

लग न जाए कहीं आंधियों की नज़र।
तूफ़ान के दूत को मिल न जाए खबर।।
मिल गयी हो डगर बंध गया हो सफर।
फिर भी मंजिल को जाने क्या मन्जूर है।।

डगर उनके लिए शुभ हो ! ये कविताएं विश्वास दिलाती है कि भविष्य में उनकी अभिव्यक्ति अधिक सुन्दर होगी, अधिक समर्थ होगी।

-डॉ. ओमप्रकाश गुप्त

दो शब्द

स्वतः प्रस्फुटित भावों के काव्य चित्रण के इस प्रयास को 'उच्छवास' का नाम दे रही हूँ, क्योंकि जो कुछ भी लिखा गया उनमें मन की स्वच्छन्द भावनाओं के सिवा और कोई आग्रह नहीं है। केवल आत्म-तुष्टि के लिए जिस आभास, प्रतीति और सम्भूति को पाठक-गण के समक्ष उपस्थित कर रही हूँ, मैं नहीं जानती उनको कितना लाभ हो सकता है। अन्तर भावनाओं की प्रस्तुति का लोभ ही मुझे इस द्वार तक ले आया है। अन्यथा एक साध ारण गृहणी के नाते किन्हीं ऊंचाइयों को छू लेने का सामर्थ्य कहां। पुस्तक की त्रुटियां मेरी अपनी हैं और जो कुछ अच्छा है वह उस प्रभु की कृपा है। यदि मेरे इस प्रयास से किसी का कोई लाभ हो तो वह मेरा परम् सौभाग्य है। पाठक-गण की ओर से प्रोत्साहन प्राप्त करने पर अपने अगले कविता संग्रह को प्रकाशित करने का साहस करूंगी। इस संग्रह को प्रकाशित करने में मेरे पति देव श्री केवल रत्न गुप्ता जी का सहयोग ही मुझे प्रोत्साहित करने में सहायक है। अतः उनके इस अनुग्रह के लिए मैं उनकी आभारी हूँ।

-कृष्णा गुप्ता

अनुक्रमणिका

हिय सीप में ढलते यह भावों के मोती,
लाई हूँ अब तट पर उच्छवासों में ढोती।

प्राण और मृत्यु

प्राण अश्व की काल नाग से,
चिर मैत्री का दाम दण्ड है,
यह जीवन की सेज।

तरु परिपूरित कर्म फलों से,
आदि पुरुष के दिगदिगन्त हैं,
रखता सभी सहेज।

चरै वेति, चरै वेति, चरै वेति,
विश्व धर्म का मात्र मन्त्र है,
सब दर्शन का सार।

प्राण तुरंग अथक गति अविरत,
काल नाग विश्रब्ध अनुसरत,
मगच्छादित फल भार।

ओ मन वारो, अविकम्पित लौ,
बेगवती पवत बांध पग सौं,
ध्यान मध्य ले तेज।

चिर जागे सोए जीव शिशु,
निर्भय होई नाग सन खेले,
अस जीवन की सेज।

□□

कर्मभूमि

कर्मभूमि है कभी लेना कभी देना भी होगा,
धूप भर भर हंस लिया तो ओस भर रोना भी होगा।
कब धुली है गठरियां जब तक न गंगा जल हिय हो,
भाग्य कब कुछ है खिलाता हाथों ने छाले न पीए हो।

गगन भर पाते रहे तो, बदली भर देना भी होगा,
पूनमें पीते रहे तो, अमावसें ढोना ही होगा।
आज तक जो भी चला है वह बटोही ही रहा है,
कहीं पुजा कहीं पर पिटा, अपना किया पाता रहा है।

भूमि भर खाते रहे तो, गरल घट पीना ही होगा,
पवन भर चलते रहे पाषाण भर सोना ही होगा।
विश्व के वर्तुल में आकर भाग्य के खाकर थपेड़े,
कौन रुक पाता है आखिर पार लग जाते हैं बेड़े।

नदी भर बहते रहे, सागर मिलन जोहना ही होगा?
आयु भर मरते रहे, तो मृत्यु क्षण जीना ही होगा।
दिन यहां आते सुनहले रात कब काली न होती,
ताज से सजते है जो शिर, आँख क्या उनकी न रोती।
बिन बुलाए दर्द क्षण को मुस्करा सहना ही होगा,
अर्चना मन्दिर चढ़े तो बेदि बलि सोना ही होगा।

□□

नमन्

हरो हे, अब मदन आघात,
बरो हे, तब ज्योति प्रभात,
भ्रमत डग श्रमित डगमगात,
चकित लख तृषा तीव्र संघात,
कहां लौ डगर की विसात,
कृपा करो, कर गहो।

जगाओ ज्ञान दीप हिय,
काम तज, सुधा रस पीएं,
तपन हट, जलें ऋत के दीए,
पाएं सम्भूति सुकृत्य किए,
प्रवर्षण करो सत्य के लिए,
वाणी में नाम दीप धरो हे।

□□

परिचय

मैं प्रांजल पाथोद संकुल,
नेह का अम्भोज कोमल,
भर हृदय मकरन्द नीरद,
उत्फुल्ल उत्सर्ग का पल,

खुनिस कब तक होड़ लेकर,
उत्स पर बग मेल होगा,
कब जुगुप्सा ठहर पायेगी,
यहां उत्सव नेह होगा।

लग रहा खद्योत अंजोरी,
मगर प्रगल्भ कितना,
नापने आओगे पाओगे,
गगन के न्यास जितना।

क्यों ऋतु की तिरपटी;
जव्वास के सम समझते हो,
क्यों न अवगुण्ठन उठा,
उज्जास अन्तर लोचते हो।

तुम कुहक में करष रत हो,
कोसते कच्च मोचते हो,
मैं तुम्हारे प्रमद से हत,
नख सें पुहुभि नोचती हूँ।

ज्योति में यह असित का भ्रम,
जब जहां छंट जाएगा,
अलिन्द पर रंगोलियों का,
पर्व पावन आएगा।

फिर जुगुप्सा की यह शिविका,
बूढ़ जाएगी नेह अंबुज,
पीर उड़े घन सार जैसी,
प्रीत प्रवर्षण में बुझ बुझ।

□□

तेरा अंश

तेरी व्यक्तता का ही एक पर्व मैं हूँ।

कभी छन्द गढ़ना, कभी गीत गाना,
कभी उसके मुखड़ों की प्रतिमा सजाना।
कहीं तब कोई रागिनी जन्मती है,
प्रतिष्ठा उसी रागिनी की तो मैं हूँ। तेरी.....

निशा तम लटों का झुलाती है पलना,
किरण चल ठुमक ठुम सिखाती है चलना।
कोई ओस कण पी कली फूटती है,
उसी रूप की मुग्धता रश्मि मैं हूँ। तेरी.....

धुलाती ही रहती कछारों को लहरें,
मरु-स्थल से रिश्ते सदा उन के गहरे।
कभी ढूंढती है मिलन स्वाति सीपी,
मिलन का वही मुक्त संगीत मैं हूँ। तेरी.....

समागम सभएँ बदलिया सजाती,
पगी प्रीत पगली बहुत भीग जाती।
पवि आरती के लिए फूंकती है,
उसी पर्व का एक संदीप मैं हूँ। तेरी.....

प्रति रोम मेरा तुम्हीं से है मण्डित,
मुझे रस सुधा का है बनना अखण्डित,
जो आनन्द धारा तेरी है बरसती,
उसी धार का इक लघु अंश मैं हूँ। तेरी.....

□□

आरती दीप

आरती का दीप हूँ आरती सजाइए।
याचना की सीप हूँ स्वाति बूँद लाइए।

नीर भरे मेघ में सार क्या असार क्या।
मन मराल के लिए विवेक मोती चाहिए।
अर्चना प्रदीप हूँ ज्योति से मिलाइए।

निर्विकार साधना प्रीत पोर में पले।
भावना का फूल हूँ चरण में लगाइए।
सान्ध्य का सुदीप हूँ वन्दना जगाइए।

विषय नाग नथ प्रिय अंकिचनों की पंक्ति दे।
देव चरण धूल हूँ व्यर्थ न उड़ाइए।
पीत वर्ण द्वीप हूँ श्याम व्याम आइए।

त्रिविध वासना भुला वरद हस्त दान दे।
शक्ति का त्रिशूल हूँ शिवस्तवन सुनाइए।
तुम आकाश, दीप मैं द्वैत यह मिटाइए।

आरती का दीप हूँ आरती सजाइए।

□□

अनश्वर गीत

आज कल्पना की उड़ान
नभ नक्षत्रों को छू आती।

अल्प दृष्टि तो क्या ? मन की गति
परम गुह्य में रम जाती।

पार्थिव देह में दिव्य सृष्टि के
सर्व तत्व होते उदीप्त,

छः हाथ के माटी तन में
शक्तिमान सम्पूर्ण सिक्त।

मानव का मस्तिष्क गुह्यतम
भेद खोलकर रख देता,

मन तन के भीतर छुप छुप कर
स्वाद सभी के चख लेता।

नील वितान के अपर छोर पर
कितना और ब्रह्माण्ड होगा

इस इच्छा जिज्ञासा ने ही
आवागमन रचा होगा।

न जाने किन किन लोकों में
जन्म जन्म हम घूम चुके,

जाने कितने नक्षत्रों की
गोदी में हम खेल चुके।

न जाने कितने अशरीरी
अविराल आते जाते है,

चुपके चुपके भेद अपर के
कानों में कह जाते हैं।

शक्ति अगर न होती अपरिमित
तो विस्तार न होता यह,

सहज संस्कारों से जागृत
ज्ञान कहां से पाता गेह।

परमाणु की प्रवल ऊर्जा
कहां उजागर हो पाती,

गोपनीय प्रकृति शक्ति की
भाषा व्यक्त कहां होती।

स्पर्श हीन अदृश्य अगोचर
क्योंकर बन्धन में आता,

निरस, विरत, विश्रव्य, अगन्धित
कभी साकार न हो पाता।

युगों युगों से काल का दामन
जीव पकड़ चलता रहता,

मृत्यु गति देती है सर्वदा
जन्म इसे भाषा देता।

अशरीरी यह तीन कमल में

तीन लोक में रहे अमर,

बदल गाड़ियां मंजिल ढोता
संस्कार धन बान्ध कमर।

जीव महाज्ञानों का ग्रंथ है
चलता फिरता एक ब्रह्माण्ड,

जब जब पर्दा खोल देखता
सुनता पाठ ऋचा अखण्ड।

गति निर्वाध बिना पंखों के
मन विमान को वरद हुई,

सर्वश्रेष्ठ मानव जीवन को
ज्ञान तालिका प्राप्त भई।

मानवी कृत्यों की गुणवत्ता
दशों दिशाएँ भान करें,

नश्वरता में अमर अखण्डित
दिव्य शक्ति का गान करें।

यह अध्याय संग प्रलय के
कभी समाप्त न हो पाता,

ज्ञान अमर व्यापक होकर
अपनी सत्ता फैलाता।

यह संसार प्रकृति विकृति का

ही केवल स्वरूप नहीं,

रचनाकर स्वयं क्रियान्वित
रचता अपना आप सही।

प्रलय काल में अपने ही
कोके में लय हो जाता है।

सृष्टि काल में पुनः जागृत
जीवन सरित बहाता है।

ज्ञान यत्र का तत्र, सर्वदा
अपने में नित्य ओतप्रोत,

गति में बहता छू छू जाता
जगह जगह खोजता स्रोत।

नित्य नए रंगों में रंगता
नयी नयी पहने पोशाक,

नित्य नया आह्लाद बरसता
अमर अखण्डित इसकी धाक।

ज्ञान अमर है इसीलिए
यह सृष्टि चक्र अखण्डित है,

रूह अमर है इसीलिए
मानव सृष्टि का पण्डित है।

अमर कल्पना है इस कारण

कर्म व्यस्तता चालू है,

नीर शिलायों से सागर तक
ढोती रहती वायु है।

फिर अपने कंधों पर ढोकर
पर्वत के पुनः दे आती।

इसी तरह लौकिक अलौकिक
सृष्टि सदा जीवन पाती।

यह आदान प्रदान रूप का
भेद भले ही करता हो,

लोक भेद से, काल भेद से
भले प्रवाहित होता हो।

मगर प्रकृति के मूल तत्व से
विलग कभी न हो सकता।

कभी प्रबुद्ध कर्म संचारित
कभी समाधिस्थ होता।

□□

समर्पण

सत्य मैं तो प्रमाण तुम।

मै ऋचा, अनुसन्धान तुम।

मै प्रयोग, उदीयमान तुम।

मै धरती, प्रतिष्ठान तुम।

मै प्रस्तर, प्रतियमान तुम।

मै जल कण, उदधिमान तुम।

मै मृणमयी, प्राण धाम तुम।

मै अगणित, समुच्यगान तुम।

मै का हो रहा विलय, हे सविते,

मै का अन्तधाम तुम।

मै सत्य तो प्रमाण तुम।

□□

याचना

मुझे वाणी का दो वरदान
मुझे दे दो स्वर का तुम ज्ञान।

अलंकारों से खाली है,
मेरी मंजुषा का कोणा,
ढलते छन्द ऋचा जिससे,
कहां ढूंढू मैं वह सोना।

करूँ कैसे कोई अभिमान,
न करना आता तेरा गान,
मुझे वाणी का दो वरदान,
मुझे स्वर का दे दो तुम ज्ञान।

मेरा यह रूप बौना सा,
इसे कैसे उस्सारूँ मैं ?
बैठ घोंघे के कोके में,
विराट को कैसे धारूँ मैं?

बना व्यक्तित्व का लघुमान,
करूँ मैं कैसे सागर पान।
मुझे वाणी का दो वरदान,
मुझे स्वर का दे दो प्रिय ज्ञान।

सफलता के चरण चूमूँ,
नहीं सौभाग्य में इतना।
रहूँ प्यासी जलधि के पास,
उपेक्षित क्यों रहूँ इतना।

छेड़ देती उषा जब ध्यान,
तड़प उठते तब दुर्बल प्राण।
मुझे वाणी का दो वरदान,
मुझे स्वर का दे दो प्रिय, ज्ञान।

तरंगों पर हूँ लहराती,
थाह का मैं क्या जानूँ सार ?
तृषित हूँ अंजुलि भर की,
विलसित तेरां पारावार।

सुना है तुम हो करुणावान,
हिचक क्या देने को लंघुदान।
मुझे वाणी का दो वरदान,
मुझे स्वर का दे दो प्रिय, ज्ञान।

□□

अटल विश्वास

तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।

दिग्भ्रमित है खोज अल्हड़ है पथिक का हर कदम,
रोकती शंका प्राचीरें कर रही साहस शमन,
हर उखड़ती सांस को संकल्प शिव का बोल दो।
तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।

रोग निर्धनता अभावों ने जिन्हें पंगु किया,
मजबूरियों की वेदना ने जिन को गूंगा कर दिया,
अब कृपा के सब मुहाने उनके घर को मोड़ दो।
तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।

छीजती अनमोल राशी ऊर्जा को बान्ध कर,
क्षणिक आवेगों को अपनी बर्जना से साध कर,
ओजस्विता को जिन्दगी के जल कलश में तोल दो।
तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।

कश्तियां लहरों के संग जीने को कृत संकल्प हैं,
गहन है पाथोधि पर पतवार के कर स्वल्प हैं,
नाविकों का आत्म पौरुष आस्था से जोड़ दो।
तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।

समर का आह्वान लेकर अंशु माली चल दिए,
नील नभ ने रक्त किरणों के भरे प्याले पीए,
कर्म की अनमोल गरिमा घोष का स्वर घोल दो।
तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।

आज सागर को धरा भी प्रीत का सन्देश दे,
रत्न के अम्बार सागर भी धरा को सौंप दे,
शोषकों और शोषितों का भेद सम पर तोड़ दो।
तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।

□□

पांच तत्व सोम बन झरें

जल : अनन्त उर्मियों से बिन्दू एक ढुलक कर,
दिशायों की भुजायों में बने अजर अमर,
पवित्र जल का एक ऐसा कण बनायो तुम,
जो युग युगों की प्यास तृप्ति कलश से भरे।
सोम बन झरे।

अग्नि : अनन्त अग्नियों से ज्योति एक उभर कर,
तमिस्र के सकल फन्द भस्मसात कर;
किरण उज्जास की तेजस्वी लौ बनायो तुम,
जो इस धरा को ज्ञान के प्रकाश से भरे।
सोम बन झरे।

आकाश : अनन्त ब्रह्मण्ड क्रोड़ में जिसके विलास कर,
सशब्द ध्वनित व्योम को करें निरन्तर,
शुन्याकाश का सशक्त स्वर बनायो तुम,
अज्ञात को जो शब्द के विलास से भरे।
सोम बन झरे।

वायु : अनन्त की उड़ान से समर्थ शक्ति भर,

विश्व भर संजीवनी साकार प्राण धर,
सशक्त कर्म का प्रवल प्रवाह बनायो तुम,
जो चर अचर सुकर्म के उफान से भरे।
सोम बन झरे।

पृथ्वी : अनन्त तारा मण्डलों नक्षत्रों से झर,
धरा के परम रूप की अपूर्व धरोहर,
सुदिव्यता साकारता का चर बनायो तुम,
तेरी महानता से जो हृदय सकल भरे।
सोम बन झरे।

□□

तू दे मुझको छन्द

तू दे मुझको छन्द, तुम्हें मैं गीत सुनाऊँ,
तू खोल द्वार, मैं उसमें अपना हृदय बिछाऊँ।

मैं अमृतघट बेकार जगत के कोलाहल में,
कहीं छली न जाऊँ तेरे मृग माया जल में,
तू ओक लगा, मैं सब अमृत उसमें ढुलकाऊँ।
फिर सलिल सुधा में जीवन का हर कोण डुबाऊँ।

मैं हूँ वीणा पर तारों की झंकार तू ही है,
मेरे गीतों का एक मात्र अलंकार तू ही है,
तू स्वर दे जा, मैं तब गरिमा नभ तक गुंजाऊँ।
तू दे वरदान, मैं साम वेद के गाने गाऊँ।

अभिशाप भरे जग में क्रन्दन की आह भरी है,
अभिशप्त हृदयों में सुख पाने की चाह भरी है,
तेरा करुणामय हस्त बढ़े तो उन्हें रिझाऊँ।
अपने गीतों की शीतल छांह में उन्हें सुलाऊँ।

तू इस जगती से भूख रोग सन्ताप मिटा दे,
तू दानवता को मानवता का जाम पिला दे,
मैं मन का मन्दिर खोल तुम्हें भगवान बनाऊँ।
फिर प्रीत सजा, मैं प्रेम पगी आरती जगाऊँ।

□□

ज्योति कलश

कर में ज्योति कलश है
ज्योति मैं किसे वरूँ?

सुधा छलकता सर है
भेंट यह किसे धरूँ?

जग बलिहारी सुरा चषक पर,
साकी के पग के घुंघरू पर,

कंचन की मादक छलकन से
ध्यान मैं कैसे छलूँ?
ज्योति मैं किसे वरूँ?

क्यों मन को इतनी उत्सुकता
आतुरता घेरे रहती है,

चरम बिन्दु में तादात्म्य की
अभिलाषा क्यों कुबलाती है,

अंतर की बहती गंगा को
प्रकट मैं कैसे करूँ?
ज्योति मैं किसे वरूँ?

मांगने को तो मांग रहा है

याचक सा जग खड़ा द्वारे,

लेकिन उसको केवल चाहिए
चांदी के कुछ कण सिकता के,

सागर के उजले माणिक मैं
उनमें कैसे जड़ूँ ?
ज्योति मैं किसे वरूँ ?

□□

उद्देश्य

मुझे नहीं रुचता है जग में
आकर ज्यूँ ही बीत जाना,
मुझे नहीं जंचता है
खाना पीना और फिर मर जाना।

एक फूल जो खिला झर गया
उसका भी क्या जीना है,
फूल बनूँ तो किसी शहादत
का श्रृंगार पिरोना है।

अपनी महक से सारी धरती
मुझको गुल मय करनी है,
एक एक हिय के छत्तों पर
मधु की गागर भरनी है।

पिसती पिसती मानवता लख
देख नहीं मुख मोड़ लेना,
जख्म जख्म पर मरहम देकर
रुचता है दुःख हर लेना।

दीन दुखी प्राणों का संबल
बन जननी सी मैं चहकूँ।
कली कली में जीवन बन कर
जग उपवन में मैं महकूँ।

मुरझाया जीवन मेरे हाथों

फिर से जीवन में लौटे।

रूठी बगिया मान छोड़ दे

नेह भरी पाकर छीटें।

चुरा पराई दुखद कथाएँ

मंगल दामन में भरना।

मधुर सुरक्षित छाया देकर

दर्द कराहें खो लेना।

मेरी बगिया बहके पथिकों

को ठण्डा जल सींच सके।

मेरा दीपक महातिमिर में

मंगल ज्योति खींच सके।

मेरा आंगन महानाश में

जल प्लावन को रोक सके।

तूफानों में उलझे प्राणों को

निज संबल सौंप सके।

ऐसे जीकर भाता है फिर

पत्तों जैसे झर जाना

धरती के उजले आंचल पर

नाम का मोती जड़ जाना।

□□

क्या विश्वास करूँ

क्षण भंगुर प्रवंचक जग पर
क्या विश्वास करूँ

इन मायावी मृदु बचनों पर
कैसे धीर धरूँ?

कैसे इस अनबुझी राह पर
कोई डग भर लूँ?

छलनायों की गाथायों को मैं
कैसे निज स्वर दूँ?

फिसल गया हो सत्य यहाँ से,
उग आए हों संशय काटें,
उसे प्रकाश कहूँ?

क्षण भंगुर प्रवंचक जग पर
क्या विश्वास करूँ?

अच्छा है वो रंक अन्धेरा
जो नभ पर्दा खोल दिखाता।

अब इस उधड़े हुए सत्य को
क्यों कर आज छलूँ?

क्षण भंगुर प्रवंचक जग पर
क्या विश्वास करूँ?

मेरा यह नन्हा सा दीपक
दे देगा मुझको मेरा पथ।

मैं अपने अन्तर पट के ही
क्यों न देव वरूँ?

क्षण भंगुर प्रवंचक जग पर
क्या विश्वास करूँ?

□□

कहां तक मैं जीऊं

यह छलावे से भरा जीवन कहाँ तक मै जीऊँ?
घुल रहा मीठा गरल हर पल, कहाँ तक मै पीऊँ?

यह तृषा का दैत्य घटने का न लेता नाम अब,
उधड़ती यह कर्म की कड़ियां कहाँ तक मै सीऊँ?
यह छलावे से भरा जीवन कहाँ तक मै जीऊँ?

सत्य सलीवों पर टंगा गुहार देता जा रहा,
झूठ के मनुहार मै क्यों कर हिय से बाँध लूँ?
यह छलावे से भरा जीवन कहाँ तक मै जीऊँ?

आ रही निबिड़ बन से क्रन्दनों की यह सदा,
करके अनसुना, सुखों की सेज मैं कैसे सीऊँ?
यह छलावे से भरा जीवन कहाँ तक मै जीऊँ?

कल्पना के स्वप्न सोनल सन्दली सुगन्ध भीने,
इस तड़पते सत्य की गोदी में कैसे अब बीनूँ?
यह छलावे से भरा जीवन कहाँ तक मै जीऊँ?

स्वर्ग के साये में पलता नरक जिन्दा देख कर,
क्षण भुलावों में हिय की स्वच्छता कैसे छलूँ?
यह छलावे से भरा जीवन कहाँ तक मै जीऊँ?

□□

मैं नचिकेता

मैं नचिकेता पूछ रहा
कहो यमराज मृत्यु है क्या ?
वृच्चिक दंश यातना क्या सच
केंचुल सा तन त्याग है क्या ?
भीषण ज्वालाओं में जलता
भी क्यों मृत्यु से भयभीत,
जन्म जन्म तप पड़ जाते कम
एक मृत्यु की चिता हित।
यदि मृत्यु है नींद सुहानी
तो क्यों भीषण इसका रूप,
प्रभु मिलन है यदि मृत्यु तो
खड़े प्रतोली क्यों जमदूत ?
बाद मृत्यु के क्या गति होगी
यह तो समझूँगा पीछे,
कहो मृत्यु का सत्य ही पहले
तन से प्राण कैसे खींचे?
क्यों यह अपने साथ वाहिनी
उल्का पातों की ढोती,
क्यों भूकम्प धरा कंपाते
क्यों दुर्घटनाएं होती?
रोग भयंकर क्यों मृत्यु का
रूप बनाते हैं विकराल,
क्यों पदचाप मृत्यु की सुन
रोने लगते हैं श्रृंगाल?

क्यूँ शुभ वेलाओं में इसका
नाम न कोई चाहता लेना,
क्यों फूलों की सेज सरीखा
इसका होता नहीं बिछौना।
क्यों थकती साँसें रुकने से
पहले सिसक सिसक जाती,
क्यों असकी आगमन सूचना
साहस के गिरि थर्राती?
क्यों जीवन विष्णु सा सुन्दर
क्यों मृत्यु है ताण्डव हास,
कैसी है पीड़ा मृत्यु की,
कैसा है उसका आभास?
क्या तुमने हर मृत्यु की
पीड़ा को जीकर देखा है?
क्या तुमने हर जाती रूह की
रूह का अंतरतम लेखा है?
यह मृत्यु का परम रहस्य
नहीं तुमने बतलाया था।
जब उपनिषदों में कठ का
मुझको यह पाठ पढ़ाया था।
जन्म और मृत्यु के भीतर
का जीवन सब है साकार,
मृत्यु और जन्म का अन्तर
समय तो रहता है निराकार।

अपने इस साकार में भी
हम कितने ही निराकार रहे,
जीए सुषुप्ति के क्षण कितने
सोए जागृत सार रहे।

क्या अनुभव है मर जाने का
नहीं सुना पाता कोई,
कैसे वह क्षण जीकर देखूँ
जागी जिज्ञासा सोई?

वैसे तो युग युग से मैंने भी
दर्द मृत्यु का बहुत सहा,
स्मृति पट से मिट-मिट कर
अनबूझ कहानी बना रहा।

निपट अकेला रहा भीड़ में
गया भ्रांतियों में पकड़ा,
प्रश्न चिह्न बन पूछ रहा
मैं नचिकेता द्वारा खड़ा?

□□

जीवन का जहर

दिन और रात जीए जाता है,
कड़वे घूँट पीए जाता है।
घुँ घुँ करके जलता अन्तर,
फटकारों में पलता भीतर,
मन तुझको मैं पूछ रही क्यों
कर्म फन्द बुनता जाता है।
दिन और रात जीए जाता है,
कड़वे घूँट पीए जाता है।
अपनी बुनी हुई तारों को
अपने चारों और लपेटे,
जीने की इच्छा से प्रेरित
पेबन्दों से भरता जाता है।
दिन और रात जीए जाता है,
कड़वे घूँट पीए जाता है।
हर पेबन्द खोल मुँह पूछे
क्यों आए हो, क्यों जीते हो?
क्यों धरती पर बोझ बने हो,
जीना अगर नहीं आता है।
दिन और रात जीए जाता है,
कड़वे घूँट पीए जाता है।
ममता का मायावी सपना,
राग द्वेष की व्यर्थ कल्पना,

क्यों कर रहता है सहलाता,

बन्धन फैलाता जाता है।

दिन और रात जीए जाता है,

कड़वे घूँट पीए जाता है।

कंकड़ पैरों में चुभते है,

चुभ चुभ कर हृदय छिदते है,

फिर भी देकर मोती चारा

इनको बहलाता जाता है।

दिन और रात जीए जाता है,

कड़वे घूँट पीए जाता है।

□□

तू ढूँढ अपना रास्ता

तू ढूँढ अपना रास्ता
तू राह अपनी खुद बना,
कोई बिछाए पांवरी
तू यह उमीद न लगा।
चमक सका है सूर्य अपने
तेज अपने दम से ही,
है चन्द्र ने छिड़क किरण
बनाई रजनी हम सखी,
गर्ज गर्ज के बादलों ने
व्योम को निगल लिया,
तुम्हीं क्यों सोचते हो कि
कोई जलायेगा दीया।
तू ढूँढ अपना रास्ता
तू राह अपनी खुद बना।
तू सोचता है आज या कल
इक सुबह तो आयेगी,
जो राह में बिछा के फूल
नव सन्देश लाएगी,
जो व्योम को बुलंदियों पर
नाम तेरा दे लिखा,
उम्मीद पर ना जी स्वयं
स्वर्ग को पास खींच ला।

तू ढूँढ अपना रास्ता
तू राह अपनी खुद बना।

सफल नहीं हुआ तो दोष
और को न दे कभी,

स्वयं प्रबुद्ध होके अपनी
शक्ति को जगा अभी,

जभी भरेगी साक्षी,
आकाश थपथपायेगा,

उठे जो अपने दम पै हैं
वह मंजिलों को लेंगें पा।

तू ढूँढ अपना रास्ता
तू राह अपनी खुद बना।

□□

संघर्ष

उठता गिरता जीवन,
आवरण सुख वर्षण,
भीतर पीड़ा घर्षण,

आंखे स्मित मुख अवाक।

महत्तम किरण जाल,
फूटे इक पल गुलाल,
क्षण क्षण ताड़न तमाल,

सहसा धक धक धमाक।

आशा आरती हाथ,
झुकता पुनश्च माथ,
होगा कब सुप्रभात,

विषधर फन नाक-चाक।

मम माथ नमन करे,
छलिया न स्वप्न छले,
संध्या के दीप तले,

प्रवर्षण मधु के पिनाक।

□□

आशानुबन्ध

ओ आशा अनुबन्ध आज
विश्वास छलो मत मेरा
खोल नरक के द्वार
सजाती रही हूँ स्वर्ग सवेरा।
दूर कहाँ कब स्वर्ग
नरक ही उसे पालता आया,
दर्द प्रसव का हेतु
सदा मधु मास यहां मुस्काया।
कोई कारा कीर को बन्धन
सदा नहीं दे पाई,
उर्मि ढुलक जाती सागर में
पा अपनी तरुणाई।
आज खींच रेखाएँ पथ
व्यवधान बनो मत मेरा,
रेखा की ज्वाला ही करती
रहती दूर अन्धेरा।
बन फूलों से सजी हुई है
बेशक यह वर माला,
दंश नहीं पाले इसमें है
करुणा की मधुशाला।
करुणा से भीगी कलियों ने
कभी बरे क्या क्रन्दन,

अरे बता दो क्या ज्वाला
देता है, लेप से चन्दन।

अरे हठी ले, हठ छोड़ो
सज आया मधु बन तेरा,

कली कली कर बद्ध खड़ी
नत मस्तक विमल सवेरा।

❑❑

वार्धक्य

नयन सर तृषित पर,
बुढ़ी सी पंक्तियां, उलझे हुए से स्वर,
दुर्बल सा गति गीत, नयन सर तृषित पर।
पकड़ फिसल फिसल द्वार को रही ठुकराती।
शान्त मधुर मृत्यु तप्त जागरण लुभावती।
छलक छलक चित्रपट, भिगो रहे नभ विरत।
उफन उफन सरितनद हिमालय ढा रहे।
चीलों घिरी डगर गर्त में रुके सफर।
कल्पना नेपथ्य रव गंग सा लुभा रहे।
क्या ही आश्र्चय है, जिन्दगी का तगर,
वास्तविक शून्यता, लगे बसा हुआ नगर।
बुढ़ी सी पंक्तियां, उलझे हुए से स्वर,
दुर्बल सा गति गीत, नयन सर तृषित पर।

□□

नव शिशु के प्रति

नयन ज्योति शिशिर धाम,
सुखद कोमल तुद विराम।।

मन्द मन्द पावस फुहार,
झलके चन्द्र मुख ललाम।

मूक पर मुखर सुबोल,
घोल रही मधुर घोल।

शुभ्र शुभ्र कुंद कलोल,
जागी रागिनी अनाम।।

यामिनी का तिमिर तोड़,
किरण राग अंग जोड़।

स्वन्दनों का जोड़ मोड़,
बारूँ कोटि कोटि काम।।

बाँटी सीरनी सुगन्ध,
अबोल बोल बन निबन्ध।

रोम रोम भर आनन्द,
अन्ध कूप किया सुधाम।।

□□

एक स्वप्न हो उठा साकार

एक स्वप्न हो उठा साकार गोद में,
अंग अंग पुलक बन गया प्रमोद में।

हंस उठे दो नयन किसी नयन ज्योति में,
संगीत हिल उठा उमंग हृदय मोती में।

नींद हुई कफूर रात जगमगा उठी,
वात्सल्य मयी गोद भरभरा उठी।

एक ओर ताज तख़्त हैं, ऐश्वर्य है,
एक ओर विष्ठा मूत भरा दौल है।

मां उमंग भरी दौल पर निसार है,
क्योंकि उसमें अपना रूप और प्यार है।

क्या नया स्पन्द हिल रहा है फूल बन,
मां मग्न सहलाती उसको स्वयं धूल बन।

मां चकित है किस तरह यह फूल खिल गया,
जादू भरा कुछ शिशु के संग घुल गया।

शिशु संग घर में आयी क्या ब्हार है,
पंक्तियों की पंक्तियाँ ज्यूँ दीप धार है।

बिखरी बिखरी टहनियां हो गयी अंजमन,
महफिलें जमीं, गया रुदन गीत बन।

घाट घाट घूम चुके जिसकी शोध में
चुपके चुपके उतर आया चक से गोद में।

सारा सारा दिन बदल गया विनोद में,
सारी सारी रात विस्मृत अबोध में।

एक स्वप्न हो उठा साकार गोद में,
अंग अंग पुलक बन गया प्रमोद में।

□□

शैशव

शैशव कुटियों में, चिथड़ों में
भी कितना मन भावन,

खुशियों की दौलत भर देता
निर्धन मां का दामन।

प्यारा सा शिशु मचल उठा
घुटनों घुटनों चलने को,

सड़क समझ कर घर का आंगन
अपनी क्रीड़ा करने को।

मां की आंखों में कितना
आह्लाद छलकता दिखता है।

मानो लाखों का दौलत धन
उसके आगे बिखरा है।

घुटनों के हाथों के बल
शिशु ऐसे डग भरता है,

जैसे वामन रूप में विष्णु
बलि राजा को छलता है।

भर किलकारी मां के पीछे
आतुर आतुर कदम लघु,

सोच रहा है जैसे उसने

बिखरा डाला बहुत मधु।

नव जीवन की नयी जोत से
छलक रहे दो नयन विमल,

मां उनमें ऐसे लखाती है
मानो खिले हों नीलकमल।

वात्सल्य के इन लहमों में
निर्धनता है दूर भगी,

उसे तो अपने भीतर लगती
मां जसुदा की ज्योति जगी।

लगता है हर नयी आंख में
कृष्ण झांकते लगते हैं,

इसीलिए शिशु झट धरती को
प्रीत बाँटने लगते हैं।

मां की ममता अपने शिशु में
रूप अलौकिक पा लेती,

पुत्र रूप में अपूर्व सुखों की
दुनिया एक जगा लेती।

मां अपनी सृजनात्मक क्षमता
देख देख पुलकित होती,

हाथ काम में, आँख शिशु पर

विलग नहीं इक पल होती।

हर नव रूप में अपने वाली
खुलती है जो भी आँखें,

सिम सिम सी खुल जाती उन संग
जादू की कितनी पांखें।

क्या जाने इस नए रूप में
कोई विभूति आयी हो,

धरती इसके कोमल पग
की थिरकन से ललचाई हो।

जो भी है महलों का वैभव
फीका है इन रून झुन बिन,

नन्दन कानन सा लगता है
शिशु से निर्धन का आँगन।

□□

प्यार बांटते चलो

डाल डाल फूल फूल प्यार बाँटते चलो,
नीर नीर में हृदय की धार बाँटते चलो।

दो घड़ी बटोही बन जहां भी ठहरना पड़े,
सौमित्र से नयन की स्नेह धार बाँटते चलो।

तार तार बाँध बाँध जोड़ दो पुलिन पुलिन,
बिखरे मोतियों को बीन माल गाँठते चलो।

चल चलो उमंग संग रंग रंग की तरंग,
हर तरंगों की गति में ताल बांधते चलो।

सरस सर स्नेह का असीम कोष संकुल,
न चुक सके, न रुक सके, अनवरत बांटते चलो।

बांटने की यह प्रथा उन्मादिनी सी है कथा,
प्रत्यावर्तन हर्ष को सम्भार बांटते चलो।

□□

पीड़ा का अहसास

हिय का आंसू, द्रग की ब्रीड़ा,
यह अन्तरध्यानी सी पीड़ा।

तन का ईंधन, मन का चन्दन,
जलता पीड़ा के हर स्पन्दन।

उर की कसकें, विधि की क्रीड़ा,
किसकी अनुगामी है पीड़ा ?

आहों में द्रग - जल की मणियां,
द्रग में सिकता कण की कणियां।

जितनी दुर्गम उतनी इड़ा,
यह अन्तर्यामी सी पीड़ा।

सुख का गर्विला महारास,
वैधो दर्दिला कुटिल हास।

जितनी दुख कर उतनी नीड़ा,
जानी अनुमानी है पीड़ा।।

□□

उज्जवल करुणे

ए मेरी उज्जवल करुणे, मौन जलो
तुम अनी मावन अखण्ड ज्योति में भीतर ढलो,
फूलो फलो।

फूलों से कहने जाती हो जो व्यथा,
पा घात लौट आएगी वह अन्तर कथा,
तुम शिव के मस्तक पर चन्द्र कला सी रहो, पलो,
मौन जलो।

खोलते ही वाणी का द्वार, बिखरता घरबार,
जरा सी चूक में होकर रह जाता तार तार,
तुम हिम सी शीतल, धवल अस्पृश्य बहो, गलो
मत टलो।

तुम जीवन का सरस तम मंत्र हो अंतर में,
जिसे जीना कठिन जग के बीहड़ बस्तर में,
तुम पालित अलोड़ित शिशु सी हिय में खलो,
पलने पलो।

इस सुख के सागर में दुबको प्रवंचना में,
अनुभूति का दर्द सहो अपने अंगना में,
सृजन के कलश भरो, शिखा सी रहो, जलो
मत गौरव लो।

पर्व की भेरी सुन प्रिय का मुख चन्द्र गहो

थाप पर नाचो, नींव के पत्थर धरती रहो,
जलायो तन बाती, कहो मत, सुने चलो
न हाथ मलो।

□□

बन्दी हूँ प्रतिशोध नहीं

जितने प्रति बन्धन दे डाले,
दाग करुण ज्वाला ने पाले,
सीकें पकड़ प्रतीक्षा पाली,
नीर भरी बन बदली काली,

चिर गति का अवरोध नहीं।

सम्मोहन में कब बन्ध पाया,
चिर मुक्ति की गोद सहलाया,
प्रति पल क्षितिज समेट रहा है,
प्राणों का पक्षी बिन पाया,[1]

छलना है ऋत बोध नहीं।

जितने दे डाले आश्वासन,
जितने वर डाले सिंहासन,
फागुन सा बुन कर बृन्दावन
कर डाला पंगु मेरा मन,

वंचक है प्रबोध नहीं।

---

१. बिना पावों के।

मुझे पावन की धूल बना दो
भाव चित्र की तूल बना दो
बहती है करुणा की धारा
मर्मस्पर्श का कूल बना दो।

ज्वाला का प्रतिरोध नहीं
बन्दी हूँ प्रतिशोध नहीं।।

□□

पिंजर पंछी

तन का बन्धन देकर प्रिय ने
पाल लिया पिंजर पंछी सा ?

राधा तो अंग राग हो गयी
जैसे वन मृग मन्त्र वशी सा।

शावक अनुगुंजन इठलाते
सुमनों सम झर झर बिखरे,

बीत गया सधुमास तो गुप चुप
क्षितिज लील लेगा अंशी सा।

भुक्त गगन की अभिलाषा को
निर्मम वरदानों से बान्धा,

कुंज कुटीरों के पहरों में
सुला दिया है निरदंशी सा।

निर निमेष पलकें हो बैठी,
चिर प्रतीक्षा मतवाली है,

सांझ पिरो आसों के मोती
पाती मोदन इन्द्र धनुषी सा।

किरणों का है ज्वार आ रहा
पट दरार देती सन्देशा,

अब पथ के व्यवधान उठा लो,
धुन छिड़ जाने दो बंशी सा।।

□□

जागते स्वप्न

जागते हैं स्वप्न अविरत
जागता है जन्म जब तक,
छोड़ दो हठ और स्वप्न को
जागने दो अब प्रलय तक।

तुम कहाँ के देव होते
मैं अगर न भाव होती,
तुम पड़े रहते अलक्षित
आरती न मैं संजोती।

अब नहीं संशय रहूंगी
राह में मैं फूल बोती,
अश्रुयों के गंगाजल से
मैं रहूंगी चरण धोती।

सब हृदय के भाव लेकर
भी भिड़ा रखना नहीं पट,
कल्पना साकार कर लूँ?
रोकना न पन्थ तब तक।

अब समय के भाल पर
मुझको इन्हें सच आंकना है,
और प्रति छाया को सारी
संसृति में झांकना है।

हो सके साकार जब तक
जन्म ले ले भटकना है,
रंग भरने को तुम्हारी
शुलियों पर लटकना है।

देव दूतों को सुना लूँ
योजना के एक दो पद,
कि स्वप्न ने ही दिया है
विश्व को यह रूप अब तक।

□□

सुख दुःख के हिंडोल

मैं जग सपनों में भूली रहती हूँ जब तक
सुख दुख के हिंडोल झूलते रहे तब तक।

हर दुःख तोड़ तोड़ कर जाता
हर सुख सिर पर छत्र ढुलाता।
दर्द वेदना छलती इक क्षण
इक क्षण आ मधुमास लुभाता।
मैं कल्पित तानों में गुंथती रहती हूँ जब तक
सुख दुख के हिंडोल झूलते रहे तब तक।

आन मान की दम्भ चाहता
बन याचक विस्मृत हो जाती,
हो पराश्रित धराशायी बन
अपने में ही पराजय पाती,
मैं मरू में सिकता कण चुनती रहती हूँ जब तक,
सुख दुख के हिंडोल झूलते रहे तब तक।

जन जन के पतझड़ से हिय पर
बरसी मधुमय पावस बन कर,
शाप ताप हरने को बैठी
अमर बेल के फूलों सी झर,
मैं जग में आह्लाद खोजती रहती जब तक,
सुख़ दुख के हिंडोल झूलते रहे तब तक।

कभी कभी मन निस्तरंग हो
द्वार खोल बन जाता द्रष्टा,
सुख दुख दोनों ही सो जाते
मैं अपूर्व का होता सृष्टा,
मैं अन्तरध्वनि अपनी भूलती रहती जब तक,
सुख दुख के हिंडोल झूलते रहे तब तक।

□□

स्वप्न सम्पदा

मैंने सपनों में जीवन की
जागृत ज्योति को है पाला।

कुलिश कुठार चला कर जग ने
जिन सुमनों का मान उछाला।

उनकी अरुनाभा को आँसू
तुहिन कणों से है धो डाला।

संशय वायु चला कर जग ने
जिन उज्जासों को खै डाला।

उनको निज सम्पुट का नेह दे
दुहिन करों ने फिर सम्भाला।

पवि प्रहार से सागर प्यासा
पोखर तट पर डेरा डाला।

बना अजस्त्र धार बहता है
मन्त्र मुग्ध यह मोहन प्याला।

सुख लोभी इस भोगी जग ने
जब भी डाली सारी हाला।

तब याचक से हरि सपनों की

मैं बन नाच उठी मधुवाला।

मैंने सपनों में जीवन की
जागृत ज्योति को है पाला।

□□

मैं लेकर पूजा थाल

मैं लेकर पूजा थाल खड़ी रहती हूँ अपने द्वार,
तुम छलिया रूप बना कर मुझको ठग जाते हो।

मैं षट रस भोजन हाथ लिये करती रहती मनुहार,
तुम भूखे प्यासे नयन लिए जाने कब कहाँ निकल जाते हो।

मैं डाल डाल कर जला दीए मग का करती श्रृंगार,
तुम दूर क्षितिज के पार गूँज के तार छेड़कर चल देते हो।

मैं मलते मलते हाथ गुहार लगाती हूँ उस पार,
तुम खोल हृदय के द्वार ठोंककर ताल खिसक जाते हो।

□□

कहीं बैसाखी छूट न जाए

न जाने कितनी दूरी
मंजिल को बाकी है अब तक,

एक एक पग गिन धरना है
पहुँच न पाएंगे जब तक।

राह गगन के ओर छोर तक
चली जा रही नित अविरत,

कदम साँस के ठिठक न जाएं
ज्योति दीप के जलने तक।

राह अनोखी है दीपों पर
कदम साँस धर चलना है,

सारा शून्य अपूर्व मोतियों
के ढेरों से भरना है,

सारे सुमन खिलाने हैं
श्रृंगार चरण में धरना है,

कहीं अधूरे रह न जाएं
अन्तिम पग के झरने तक।

बहुत बार चलते चलते पग
फिसल फिसल गिर जाते हैं,

बहुत बार भय और प्रलोभन
के साए धमकाते हैं,

बहुत बार बन्धन के धागे
जंजीरें बन जाते हैं,

कहीं बैसाखी छूट न जाए
सारे कंकड़ गलने तक।

□□

आस्थाएं डगमगाती हैं

आस्थाएं डगमगाती हैं, पुलिन को छू न पाती,
लहर मुझको छोड़ नापे दूरियाँ मैं क्या करूँ?

है किनारे का सम्मोहन और गति का भी मुझे गम,
बीत गए को पलट लाती, हो सका न क्या करूँ?

यह किनारा भी न छोड़ूँ, उस किनारे से भी मिल लूँ,
बीच की दूरी पटाते झर गई है जिन्दगी मैं क्या करूँ?

मैं किनारा और धारा बीच का भी पार का भी,
बन मिलन समारोह सजाती हो सका न क्या करूँ?

इसलिए मैंने नयन में सोख डाला है समुद्र,
और किनारों को हृदय की कैद में है बाँध डाला।

पुलिन कल्पित बैठ पीती हूँ गति का चषक भर भर,
और मस्ती में स्वयं को भूल जाती, क्या करूँ?

□□

तुम अकेले ही जलो

तुम अकेले ही जलो, दीपक
न सोचो बात मधुबन की।

इन बन्धे हाथों से कैसे
मैं सजाऊँ पाँत उपवन की।

हूँ भले प्रहरी मगर
हाथों में कंगन सी जंजीरें हैं।

स्वयं सज धज के खड़ी
पर देवता ने द्वारा भीड़े है।

उसने देखी राज पथ पर
भीड़ राका की।

क्या रिझा पाएगी तेरी लौ
यह हलकी सी।

तुम अकेले ही जलो, दीपक
न सोचो बात मधुबन की।

तुम जलो तट पर कि
सागर है गहन गम्भीर।

टिमटमाती लौ न डूबे
थाम रखना धीर।

तुम जलो जलना तुम्हें
वरदान हो जाए।

राह भटका पथिक
तुम से चेतना पाए।

तुम जलो सम्पुट में अपने
शलभ होकर भी।

हार कर रवि अंक भर ले
लौ तेरे हिय की।

तुम अकेले ही जलो, दीपक
न सोचो बात मधुबन की।

□□

मैं दुलार भरी गँगा

मैं दुलार भरी कल कल गँगा
नेह नीर लेकर चलती हूँ।

मृदुल मृदुल पावन आंचल से
मधुर वयार स्त्रवण करती हूँ।

तेजस मण्डल ओवष्ठित हो
जब जब ध्यान मग्न होती हूँ।

बिन पग अन्तर पट विमान चढ़
अन्तर में पट को धरती हूँ।

अपने परिवेशों में फैले
भ्रम तम आकुंचन करती हूँ।

मृदुल धार हर अन्तर को बर
सोम सुधा प्रति पल झरती हूँ।

□□

चंचल मन

मन चंचल झल मल सा दर्पण
चित्र पलक झलके।
एकाकी नहीं रहता इक पल
जाने कहाँ ललके।
प्रीत मयूर बना जीवन में
हृदय कुटीर पले।
नर्तन करता झनन झना झन
स्वर तरंग छलके।
वर्तमान के कटु सत्य को
थपकी देते चले।
कल्पित भावी चलचित्रों को
पल पल पट पर ले।
लघु गागर विस्तृत घेरों को
अपने अंक भरे।
वितरित कर कर रिक्त न होवे
बन बन मोती ढले।
सुर्खाबी पंखों के बल पर
होड़ गति से करे।
पल में नापे अतल गहराई
पल में नभ विहरे।

□□

मन भावन सावन

मन भावन ऋतु सावन सजनी
अंगना में आई।

अंक भरे वारिधि कोष
नभ मंडल पै छाई।

शीतल मधुर पवन मिश्रित जल
भर जीवन लहराया निर्मल।

शतशत नयन बने विकसित दल
धरती पर जागी नव हलचल।

पावस के मृदु हास से विचलित
धरती मुस्काई।

तोड़ और छोरों के घेरे
झोली फैलाई।

मन भावन ऋतु सावन सजनी
अंगना में आई।

अंक भरे वारिधि कोष
नभ मंडल में छाई।

बदल बदल करवट धरती ने
सहलाए अंकुर निज हिय में।

आशा की नव किरणों लिए में
ध्यान लगाया पावस पिय में।

रंग बिरंगी ओढ़ चुनरी
धरा बधु आई।

जलासिंक्त आंचल नहीं सम्भले
झुक झुक शर्मायी।

मन भावन ऋतु सावन सजनी
अंगना में आई।

अंक भरे वारिधि कोष
नभ मंडल में छाई।

बागों में झूले अलबेले
खेतों में कृषकों के मेले।

नदियों में जल मचले खोले
जंगल में पशुओं के रेले।

सोई सुषमा जाग उठी है
बहती पुरवाई।

मुखड़े धो-धो हंसते पर्वत
करते अगवाई।

मन भावन ऋतु सावन सजनी
अंगना में आई।

खेतों से खलिहान भरेंगे,
भूखों में नव प्राण भरेंगे।

नए नए अभियान चलेंगे,
घर घर सब जय गान करेंगे।

पाकर प्राण सुखी भारत जन
नाचें हर्षाई।

नव निधियां सौ सिद्धियां गावें
आवें इठलाई।

मन भावन ऋतु सावन सजनी
अंगना में आई।

अंक भरे वारिधि कोष
नभ मंडल पे छाई।

□□

बर्फानी सर्दी को विदा

बर्फीला सन्नाटा तोड़
नरगिस ने खोली पाँखें।

जकड़ छोड़ अंगड़ाई लेकर
जागी काव्य मयी पाखें

दूर गगन में कोई पक्षी
ले मौसम का जायका,

चिहुंक चिहुंक सन्देसा देती
फिरती नभ की गायिका।

चलो चलो छोड़ो मैदानों की
गर्मी का आलम,

पार करो बर्फीले पर्वत
छू लो घाटी पालन।

झिल मिल झिल मिल झील नहाई
नव स्नाता सी दीखे,

ठण्डी ठण्डी रवि किरणों का
गान गगन में थिरके।

कड़क कड़क कदमों के नीचे
बर्फ किड़कती जाती,

होती जाती तरल घाटी की
शिशिराच्छादित छाती।

फिसल फिसल जाते पल पल पग
संभल संभल मग चलना,

हुई क्वांरी चिकनी माटी
नये बीच फिर भरना।

गाठें फूट रही कोंपल की
नया जन्म ले ले कर,

पंख लगा कर उगी आशाएँ
थपकी मन को देकर।

□□

चन्द्रकला

चन्द्रकला सज रश्मि जाल में
नभ रथ में चली ठुमक ठुमक मग।

रूप लावण्य छटा मन मोहक
शरद निशा में धरे झमक पग।

जैसे साजों के तारों ने
छेड़ दिए हों पुलक भरे स्वर।

सोनल सपने बुन लाई हो
रजनी शशि का कलश छलक भर।

छलक छलक कर उमड़ी चन्द्रिका
प्रणयी सागर का हिम उमड़ा।

आलिंगन की प्रवल आतुरता
सागर लेता ऊर्ध्व दिशा डग।

कलल कलल चमके दामिनी सम
चन्द्रकला का बिम्ब लहर मन।

जैसे नभ से टूट पड़े हो
लक्ष लक्ष रजनी कर के तन।

शीतल सुखद अग्नि के कन्दुक
नाचे अलक्षित जादू के बल।

देख प्रकृति के व्याकुल नर्तन
मंत्र मुग्ध सा हुआ यह अग जग।

चन्द्र कला सज रश्मि जाल में
नभ रथ में चली ठुमक ठुमक मग।

शरद पूर्णिमा की यह क्रीड़ा
कितनी मुखरित कितनी नीरव।

जैसे नयनों ने पायल की
पी डाली हो झनन झनन रव।

आत्मविभोर प्रकृति विस्मृति बन
मुग्ध विमुद नयन कर विस्फारित।

चित्त चकोर की दीर्घ उड़ानें
चन्द्र पाश में आवद्ध लगभग।

चन्द्र कला सज रश्मि जाल में
नभ रथ में चली ठुमक ठुमक मग।

□□

कुछ उड़ते शब्दों की लहरें

कुछ उड़ते शब्दों की लहरें
खोज बनी, महकी, जा अटकी,

कोमल प्यासे मुँह लटकाए
तृण के दुर्बल दल पूलों पर।

यहाँ वहाँ फूलों की चौसर
हारे शतरंजी सी लुढ़की,

माँग रही थी नीर की धारा
भरी दोपहरी चमके सर पर।

बूर आम के देख कोकिला
कुहू कुहू स्वर बोल रही थी,

बेलें लोकी ककड़ी तर की
कुछ जल के कण खोज रही थी।

मैंने देखा जीवन कविता
माटी में से झाँक रही थी,

फोड़ धरा के आँचल का पट
मोल कला का आँक रही थी।

प्राणों का अवलम्ब बनी थे
लहराते पौधों की हंसी,

देती है जो तृप्ति हृदय को
न दे पाती कोई बंसी।

हंसती है प्रकृति सघन जब
होती है निस्तन्द्र चेतना,

जाग जाग संगीत धारा पर
ठुमकाती है सुखद वेदना।

परम तृप्ति के अहसासों में
जीवन काव्य उदय होता है,

माटी में जीवन हंसता है
माटी में जीवन सोता है।

शब्दों की उजड़ी सी बस्ती
पाती है प्राणों का स्वन्दन,

धरती से, नभ से, वायु से
खिलता है जब कानन नन्दन।

क्यों खोजूं में गीत तरंगे
वह मेरी बगिया में पलती,

मैं उनको शीतल जल सींचू
वह मेरे अंतर में ढलती।

□□

उदर पूर्ति का सुख

चरागाह में गटर गटर
गायें घास खाती हैं,

मुँह ऊपर उठाए अजाएँ
नन्हें पौधे चरती हैं।

कितना सुख लगता है
जब तृप्ति भरी नजरों से
यह सब मुस्कराती हैं।

नन्हा खरगोश
लटर पटर मस्ती में
लाल लाल आंखों से
एक लाडली सी निगाह
धनिए की टहनी पर
अटका देता है।

कुत्ते के पिल्ले
चूँ चूँ कुलबुलाते
कुतिया माँ के स्तनों से चिपटे

मुख मिटाते
एक अद्वितीय तृप्ति की
क्या सुन्दर अनुभूति है।

कुर्सी डाले एक किनारे
बैठी देखती हूँ एक बड़े वृक्ष पर
गिलहरी चंचल लिए फल
जल्दी जल्दी उदर भरती
उसकी मस्ती में
कितीन मस्ती हो जाती हूँ।

कितनी सौदर्य है
उदर पूर्ति में
मगर
इन्सान का उदर
भरता ही नहीं
संसार की सारी हलचल
मेहनत मुशक्कत
विज्ञान और प्रकृति
रत हैं
इसके निमित्त
मगर यह आज तक खाली दुराशा है

न भविष्य में कभी
भरने की आशा है।

यह शाश्वत ध्रुव है

जो सदा चरते रहने से ही
देती है कुछ अनुभूति
तृप्ति की।

□□

सावन की झड़ी

नाजुक नाजुक कदमों से
आई सावन की झड़ी।
मीठी मीठी फुहारें
लाई सावन की झड़ी।
गीत झिंगुर गाते
जैसे बाज रही बांसुरी।
ताल दे दे के हवा
भर देती है माधुरी।
उमस भरी दोपहरीयों में
छूती है शीत पवन।
माटी की सौंधी सुगन्ध
तन मन करती मगन।
सावन सन्देश लिए
टिटहरी शोर करे।
आगमन की चहल पहल
चारों दिशाएँ भरे।
तृषित चातक के नयन
स्वागत को आतुर।
मेघ सावन के चले
भरते साजों में सुर।

छम छमा छम बरसी
लो मोतियों की लड़ी।
नाचो रे, झूलो रे
हंसी सावन की झड़ी।

□□

ऋतु आगमन

आकाश की उजली चादर पर
बदली के काजल डोरों से,
आँकी हैं छबियों की लहरें
सूरज ने किरण कटोरों से।

मेघों ने पी ली है हाला
मस्ती की झील सकोरों से,
हिलती है झालर बदली की
वायु के मधुर झकोरों से।

यह बात सुनाती जाती है
मधुबन में कलियाँ भौरों से,
आने वाली है सावन ऋतु
कह दो जाकर तुम औरों से।

झुक आई है रंगीन छटा
चिलमन के उधड़े कोरों से,
करती है परामर्श नभ पर
बदली बादल घनघोरों से।

कि कहाँ कहाँ चल कर बरसे
कभी हौले से कभी जोरों से,
भर जाए ताल तलैया सब
जब छू छू जाए छोरों से।

फिर लहकें उपवन खेत सभी
फल फूल अन्न के ढेरों से,
फिर नभ की आंखों में चमके
रंग इन्द्र धनुष के जोरों से।

फिर पर्वों की ऋतु आ जाए
बासन्ती रंग की, शोरों से,
धरती पर थिरक उठें नुपूर
जंगल सज जाए भौरों से।

नभ पर दिनकर की दिव्यप्रभा
हंस दे शिशु वाष्प हिलोरों से,
नव नर्तन में सज सृजन कला
रत कर्म सुकर्म किशोरों से।।

□□

धुन्धों का रावण

खोलो रे वातायन, आने दो रवि वाहन,
खे कर खेले जाने दो उसको यह धुन्धों का रावण।

डूब गया मन मोती, रही कहाँ मैं सोती,
राजहंस बरसाता जाता बैठ किनारे सावन।

पल रह गए है थोड़े, बिदक गए हैं घोड़े
अब डोरों की उलझन में यह करते इत उत धावन।

कहीं खिले थे उपवन, कहीं बसे थे गुंजन
किस पागल झंझा ने आकर छू डाला इनका मन।

किरणों के बृन्दाबन, ध्वनियों के छिड़कावन,
और सुरभि के हिंडोलों में भर आए मन पावन।।

□□

कसमसाता जीवन

तन बदन पुष्प का इतना कोमल बना,
पर न कांटों का घर भी बहुत दूर है।
प्रीत सौन्दर्य है, रूप वरदान है,
राह पर मुश्किलों से ही भरपूर है।
लग न जाए कहीं आंधियों की नजर,
तूफान के दूत को मिल न जाए खबर,
मिल गई हो डगर, बन्ध गया हो सफर,
पर न जाने मंजिल को क्या मन्जूर है।
फूल के बदन को धूल न बांट ले,
तोड़ कर डाल से मौत न छांट ले।
मुस्कराहट को तुषार न ढांप ले,
ऐसा उसके नहीं घर का दस्तूर है,
कसम खाए है कुछ देवता के लिए,
कसमसाए है कुछ जिन्दगी के लिए,
चल पड़े है दीवाने सफर के लिए
रूक सके न जो विघना से मजबूर है।
वायु के संग उड़े, धार के संग बहे,
आए विवर्त तो उसके धक्के सहे,
मृदुलता घुल गई फूल पत्थर हुए
नाम उनका शहीदों में मशहूर है।

□□

दिन कतारों में बंटे हैं

दिन कतारों में बंटे हैं
रात तारों में बटी।

जिंदगी कुछ वायदों कुछ
इन्तजारों में बटी।

बंट चुकी है यह हवा
यह गूंज और यह रोशनी
रूबरू हर रूह की
धड़कन मजारों में बंटी।

दिन कतारों में बंटे हैं
रात तारों में बंटी।।

दूब के ओठों पै शबनम
नयन धारों में बंटी।
निलिमा कुछ बिजलियों में
कुछ फुहारों में बंटी।

दिन कतारों में बंटे हैं
रात तारों में बंटी।।

हाय इन्सानों की खुशियां
हैं दीवारों में बंटी
टुकड़े टुकड़े दिल की दौलत
ख्वाबगारों में बंटी।

दिन कतारों में बंटे हैं

रात तारों में बंटी।।

रंग छिटके इन्द्रधनुषी
सांझ धारों में बंटी
चन्द्रिका है बदलियों के
मन बहलाबों में बंटी।

दिन कतारों में बंटे हैं
रात तारों में बंटी।।

□□

जिन्दगी की पुकार

जिन्दगी की पुकार मुझे बार बार मत छलो।
चषक मेरा मदिरा से, बार बार मत भरो।।

मद भरे स्वर में टेर कर,
आंख मिचौली खेल कर,

मेरी सुषुप्त प्यास को तुम उभारा न करो।
जिन्दगी की पुकार मुझे बार बार मत छलो।

मैंने तुम्हारे खोल पट
देखा लिये रीते घट

मुझको सुना अहेरी गीत फिर से भुलाया न करो।
जिन्दगी की पुकार मुझे बार बार मत छलो।

भटकन तेरी चकाचौंध में
मुझको न खाक में रौंध दे

मुझे मेरे सुधा कलश में डूबता ही छोड़ दो।
जिन्दगी की पुकार मुझे बार बार मत छलो।

□□

आवाज की खिड़की

यह आवाज की खिड़की
खोल बैठी हूँ।

किसी आवाज की तलाश में
अपनी सुधबुध खो बैठी हूँ।

मुझे लगता है दिन और रात के
चक्र में चल चल कर
बूढ़े हो जाना ही
मेरी नियति नहीं है।

कुछ और भी है,
कुछ और भी है जो
आकाश पुष्प की तरह
दूर दूर मेरे आगे आगे
चलता रहता है
मै दिन रात उसे छूने में
सुख दुखों की अनुभूति से
दूर रहती हूँ।

मै एक अतृप्त मानव हूँ,
किसी लालसा का पैगम्बर,
अज्ञात के द्वार पर,
आस के दीप लिये,

इन्तजार बनी बैठी हूँ
कि कोई रोशन सवेरा
मेरे लिए
वह स्वर लाएगा,
वह राज लाएगा,
जो मुझे भौतिक जागरण से
दूर कहीं
इस आवाज के घर पहुंचा आएगा।

जहां मानव मात्र की तलाश
पूर्ण होती है।

यहां नियति और निर्णायक
के बीच में
आवाज़ का तार होकर
लोप जो जाती हूँ।

इस लिए आवाज की खिड़की
खोल लगातार-लगातार बैठी हूँ।

□□

रात तो रात बनी ही है

रात तो रात बनी ही है
दिन को मै रात बनाऊँ क्यों?

रात तो दीप टटोलती है
दिन का दिनकर मै बुझाऊँ क्यों ?

क्यों चाह करूँ अंधियारों की
मृग तृष्णा में खो जाने की ?

उजले उजले मन के मोती
अंधियारों में उलझाऊँ क्यों ?

यह रात सितारों की दुलहिन
रथ ले आती है निद्रा का।

उषा के फैले सौरभ को
तन्द्रा में अब झुठलाऊँ क्यों?

जाने पहचाने मग विस्तृत
खो जाते हैं किसी विस्मृति में

अपनी नन्ही सी पगडंडी
इस उलझन में उलझाऊँ क्यों?

यह रात अभीष्ठ रहे उतनी
श्रम से कुछ त्राण संजो पाऊ,

नव जीवन पा पग लूँ आगे
विश्राम गृह रम जाऊँ क्यों ?

मैं कर्म मार्ग का राही हूँ
मुझको रचने हैं उजियाले

पूर्व में फैली किरण कथा
को नयन मूँद फुसलाऊँ क्यों ?

रात तो रात बनी ही है,
दिन को मैं रात बनाऊँ क्यों ?

□□

धूल तो उड़ा करे

धूल तो उड़ा करे,
कारवाँ चला करे।

धूल से न हो खफा,
धूल की यही वफा।

धूल देख कर कभी,
कारवाँ रुके नहीं।

धुन यहाँ हो बढ़ने की,
कदम कभी थके नहीं।

उठ तू अपने हृदय के,
देवता को दे जगा।

प्रबल आत्म वेग की,
आंधियों में घूम जा।

ईर्षा के धूल कण,
गगन तक चढ़ा करे।

कीर्ति के यान से,
पुनः पुनः लड़ा करे।

अपनी राह ठीक तो,
मंजिलों का गम नहीं।

झूठ हारता रहे,
सत्य की ध्वजा फरे।

धूल तो उड़ा करे,
कारवाँ चला करे।

□□

लावारिस पाषाण

यह पाषाण लावारिस है
इनकी पहचान से क्या मतलब?

चुन लो जिसका जी चाहे
इनके मुकाम से क्या मतलब ?

इनको धरती के नीचे रख
ऊपर से महल बना लो तुम।

महलों में संगमरमर भर लो
नव सुन्दरता उपजा लो तुम।

लावण्य रूप़ पर मोहित जग
कब इन उपलों को पूछेगा?

तुम नाम धनी बन जाओगे
कोई इनका गांव न पूछेगा।

इनके निर्वाणी रहने का
इनाम यही है कैद रहे।

आधार अन्य के महलों का
युग-युग तक सहते बोझ रहे।

पर ठहरो, ऐसा मत सोचो
क्या जाने डोल उठे यह कब?

धरती के नीचे कुलबुल से
अब जाग रहे है यह जब तक।

हिलती है जब इनकी काया
धरती कम्पित हो जाती है।

ढह जाते हैं प्रासाद महल
जब इनकी रूह कहराती है।

जब आग उगलते उमड़ते यह
घबरा जाते हैं प्रलयंकर।

चहूँ और फैलता महा नाश
त्रिनेत्र खोल देते शंकर।

अवहेलना इनकी ठीक नहीं
इनकी पहचान करो अब तुम।

इनके अन्तर की करुणा का
सच्चा अनुमान करो अब तुम।

वसियत विरासत की भी
इनके हित अब लिखनी होगी।

वरना इनके अभिशापों को
कड़वाहट सब पीनी होगी।

कब तक यह मौन रहेंगे अब
कब तक अन्याय सहेंगे अब।

पहचान का सूर्य उग आया
कब तक यह धीर धरेंगे अब।

मार्ग इनका अब मत रोको
वरना तूफान बनेंगे अब।

इनका हक तुम इनको दे दो
फिर ही यह दोस्त बनेंगे अब।

यह भी अपनी भारत माँ के
उतने ही अपने बेटे हैं।

इनकी भी रग रग में माँ की
ममता के तार लपेटे हैं।

हर लो इनकी लावारिसता
सहलायी सह जीवन का रव।

कुछ अपना हाथ बढ़ा देखो
कुछ इनका भी समझो मतलब।

कोई पिशाच इन्हें निगले
उससे पहले अपनाओ अब।

□□

सूत्रधार हम

आज के है देव हम।

आज का विधान ही कर्म का सोपान है,
भाग्य का विधान है, कदम का निशान है।

कर्म के जादूगर हम।

अश्विनी कुमार हम, सन्त सुकुमार हम,
विश्व कर्म रेख के कुशल कर्णधार हम।

श्रम के सूत्रधार हम।

रुख फिरें हवायों के, पग हिलें फिजायों के,
विलास नव शफायों के, विकास के अदायों के।

नवल शुभ सुहास हम।

पवन के ही क्या कहें, झंझावत के अनुबन्ध,
सिन्धु क्या गगन में भी हो रहे सेतू बन्ध।

सौभाग्य का श्रृंगार हम।

घड़ी घड़ी पहर पहर, गली गली शहर शहर,
बढ़ रही छा रही निर्माण की लहर।

युग के अविष्कार हम।

खोजते नये अयाम, उन्नति के नव पयाम,
हाथ में लिए निशान, आज का गौरव वयान।

दृढ़ तरुण विचार हम।

हम पिनाक पार्थ के, गीत गाता सार्थ के,
घोष युग क्रान्ति के, विधाता देश स्वार्थ के।

अग्नेय तुमुल नाद हम।

पर्व दीप मालिका के दीप दीप के प्रभास,
हर बुझी आंख में जन्म आए ज्योति हास।

उपासना के श्वास हम।।

□□

मतवाले बनते हैं हम

कल्याणमयी जननी तेरा
अभिनन्दन करते हैं हम।

निज रक्त बहा तेरे आंचल का
अभिसिंचन करते हैं हम।

युग युग से प्रतिपादित गरिमा का
पालन करते हैं हम।

खुश रहना अहले वतन मेरे
इसलिए ही मरते हैं हम।

भारत भू मत कहना हमको
कि शौर्य की तुम्हें कमी है।

तेरे बेटों में मातृभूमि
नहीं प्यार की कुछ कमी है।

लखने को तेरा प्रफुल्ल बदन
शूरों से भरी जमी है।

तेरी खुशियों में हंसते है हम
तेरी विपद से जलते है हम।

हम जलते हैं तो अपनी आग में

सारा विश्व जलाते हैं।

अपना सर्वस्व लुटा कर माँ
तेरा आंचल सहलाते हैं।

फिर बांध कफन रण-चण्डी बन
हम गीत शहीदी गाते हैं।

संसार चकित रह जाता
जब मतवाले बनते है हम।

□□

उज्जास की ओर

घुप अन्धेरे में किरण की ही नहीं
मुझको महा उज्जास की तलाश है।

सरद कुंजों में खिली बेलायों को
बाहर खुले आकाश की तलाश है।

दबी शिलायों के हृदय पट खोलकर
मुक्त वायु में नहलाने की लग्न।

कल्पनाओं के तले घुटी आश को
सत्य के दर्शन की गहरी प्यास है।

दिलकशी नगमों के सुर और ताल पर
सुख छलावों में नही राहत कोई।

है कोई पुकार मुझको खोजती
बस उसी पुकार की तालाश है।

स्वर्ण कलशों में सुरा की छलकनों
मैं स्वर्ग के स्वप्न न संजो सकी।

खुले आंगन में प्रकृति की गोद में
मुझको महत् एश्वर्य की तालाश है।

वर्जनायों के घटा टूप बादल में

कौन पीसे इन अमूल्य क्षणिकायों को।

कुछ तो हो जिसको मै अपना जी सकूं
उन अबन्धित बन्धनों की प्यास है।

□□

कुत्तों और मक्खियों के संग

इन्सान होकर नियति अगर यही है,
कि कदम कदम पर मुसीबत में रहें जकड़े।

धूरे के ढेर पर लटके, तालू जिह्रा से सटके।
बीनते रहे गंदे गंदे कागज के टुकड़े।

पेशाबखानों के पास बाँह का तकिया
लगाकर तारों के तले सोएं।

घृणित बिमारियों का शिकार बन
मैले गन्दे दुर्गन्धित चिथड़ों में रोएं

महानगरों की एक प्रतिशत सुन्दरता में
शेष कसकती रहे नरक की यातना।

तो सोचना पड़ेगा इस संसार का शासक
कोई शैतान है या है कोई दयावान परमात्मा।

जो मंदिरों, मस्जिदों, गिरजों, गुरुद्वारों में
सज्ज धज्ज कर अभिमान से अकड़ा बैठा है।

जो धड़ा-धड़ धड़ा-धड़ दौलत बटोर कर
दीन हीनों को शिकंजें में जकड़ा ऐंठा है।

मृत्यु की इतनी भयंकर दर्दनाक हृदय
विदारक राहें बनायी है . उसने।

दहल जाता है देखकर पत्थर का दिल
जीने की इच्छा भी लग जाती है पिसने।

विश्वास घुट जाता है देखकर विभिषिका
अगर जीना यही है तो फिर मौत है क्या ?

बुचड़खानों से बहते रहते हैं खून के पनाले
बेकसूर इस तरह भरे तो फिर कसूरवार का क्या ?

कभी कभी आ जाते है गुरु अवतार पैगम्बर कोई
किताबें धर्म ईमान की लिख लिख रख जाते हैं।

लोग उनको भी, किताबों की भी पूजा करते है
इस तरह जिन्दगी के खोखले पन को भरते हैं।

लोग उनकी राह चलते है गिरते है फिर चलते है
यह सोचते है कि जन्म कर्म के बन्धन टल जायेंगे।

जो भी राह कोई बताए भेड़ों की तरह चल पड़ते है
स्वर्ग मिल जाएगा उन्हें, सारे त्रास गल जायेंगे

मगर निचुड़ती सिसकती यह बेशुमार रूहें।
भटकती डोलती ही सदा नजर आती हैं।

इन बदबूदार सडांस भरे घूरे खानों में
कुत्तों मक्खियों के संग जिन्दगी इनकी गुजर जाती है।

□□

वो क्या करें

वो क्या करें जिन्हें नहीं प्रभाएँ चन्द्र चूमती
सुबाहें अंशुमाली से न हृदय तंत्री झूमती।

जो कैद अपने जाल में झूरती मजबूरियाँ,
विकल तड़पते पंख ले न नाप सकते दूरियाँ,
न पर्व की रंगोलियाँ उनके द्वार पूरती,
जिन्दगी की हर घड़ी सिसकती बिसूरती

वो क्या करें जिन्हें नहीं प्रभाएँ चन्द्र चूमती।

जो जन्म से अभिशप्त हैं, अपंग हैं, प्रतंत्र हैं,
सीखचों में बन्द हैं, तड़फड़ाते यन्त्र हैं,
कभी नहीं कोई बहार आके उनको सूंघती
कसमसाती जिन्दगी नरक में रहती उँघती।

वो क्या करें जिन्हें नहीं प्रभाएँ चन्द्र चूमती।

ऐ या खुदा कोई घड़ी दे उनके भी नसीब में,
जगा सकें जरा सी लौ निज अन्धेरे दीप में,
तेरी ज़रा सी मेहर उनकी किस्मतों में घूमती।
समस्त ताप भूल रुह तेरे चरण चूमती।

वो क्या करें जिन्हें नहीं प्रभाएँ चन्द्र चूमती
सुबाहें अंशुमाली से न हृदय तंत्री झूमती।

□□

सुख का खोजी मन

सुख का खोजी मन
कुलाँचे भरती है,
दर्द भरो दो क्षण में
बिलखा करता है।

इस दुखान्त जीवन नाटक में
कितने ही दुख रोग घिरे हों,
दिवा निशा की काल माल में
विष के कितने घोल पिरे हों।

ले ले अंगड़ाईयाँ
उभरा करता है,
पिड़ित होठों पर
मुस्कानें भरता है।

जग प्रांगण में नभ के नीचे
ताण्डव चलता आँखें मीचे,
क्षण क्षण जीना दूभर होता,
प्राण तड़पते पीड़ा खींचें,

जीने को आतुर
झल्लाया करता है,
बाजू फैलाकर
बुलाया करता है।

दुख सीमाएँ बाँध तोड़ दें
सुख की आशा मुँह मोड़ लें,
घोर निराशा राह रोक कर
जीने का उत्साह फोड़ दे।

मन ठुकराने की
कोशिश करता है,
आनन्द अनजाने
साँसों में भरता है।

सुख का खोजी मन
कुलाचें भरता है,
दर्द भरे दो क्षण में
बिलखा करता है।।

□□

मैं हूँ स्वर का दीप रे

मैं हूँ स्वर का दीप रे,
अन्तरध्वनि की आरती।।

नि:स्वनों के रूप हृदय
विश्व का मैं पारती।

चल रे मन, अनवरत पथ
कुछ हैं बने कुछ तू बना।

चित्र रव के अटल
मानस पटल के ले उघड़ा।

चल तुझे आवाज दे
गुहार है पुकारती।

मैं हूँ स्वर का दीप रे
अन्तरध्वनि की आरती।।

मौन मत रह यन्त्रणा
यह एक तेरी ही नहीं।

तु मुखर कर वह कहानी
जो वह कहते हैं नहीं।

तू ध्वनि का द्वार बन
वह द्वार के होंगे यति।

मैं हूँ स्वर का दीप रे
अन्तरध्वनि की आरती।।

जो कहोगी वो तुम्हारा
ही नहीं होगा कहा।

दर्द बोला न गया उनसे
तो तुमने तब कहा।

कह दो उनकी बात अपने
नाम पर जो पालती।

मैं हूँ स्वर का दीप रे
अन्तरध्वनि की आरती।।

निःस्वनों के रूप हृदय
विश्व का मैं पारती।

□□

जल धारा सा मन

जल धारा सा अब अपना मन हो आया है,
अंग अंग निज धार प्रवाह में धो लाया है।

कलुष तमस की अन्ध यवनिका खो नेपथ्य में
पारावार प्रभा का स्वयं सजो लाया है।

सौत तृषा को नेह नदी में सराबोर कर
देव गगन को जीव धरा पर पधराया है।

हर दर्पण अब प्रतिबिम्बों की माया से
झलमल तेरा रूप कलश ही छलकाया है।

जब करुणा ने घुंघट खोल भेद दे डाला,
धारा ने पग पग पर प्रियतम नहलाया है।

मदिरा और साकी के इस नवनीत रूप पर
अपनी धुन पर रीझ गया अपना साया है।

प्राण पंख पर कल कल स्वर के जादू बान्धे
मन किरणों के खेत पटल पर वो लाया है।

मधुर दृगों की चितवन जब पहचान गई मैं
रोम रोम उन्माद में मेरा अकुलाया है।

□□

आओ घर चलें साथी

आओ घर चलें साथी कितनी देर हो गयी,
सुबह से साझ तक भटकते भटकते अब अबेर हो गयी।

काले बादल पककर धवल हुए आँखें अंधियारी,
जिह्वा स्वाद खो बैठी टांगों का बोझ लग रहा भारी,

दूर किसी पहाड़ी नाले की गाती ध्वनि मंद हो गयी,
आओ घर चलें साथी कितनी देर हो गयी।।

पट के रेशम सी कोमल काया सलवट खाती है,
रास्ता खोजते खोजते बहुत चिंता सताती है,

गाते पक्षियों की उड़ानें भी अब तो दूर खो गयीं।
आओ घर चलें साथी कितनी देर हो गयी।।

वो देखो कोई मृग छौना हमें अजनबी समझता है,
चंचल नयनों से अपने खबरदार करता है,

पास चरते हुए भी चेतना सतर्क हो गयी।
आओ घर चलें साथी कितनी देर हो गयी।।

आओ मान उसकी बात हम पगडण्डी छोड़ दें,
अपनी यात्रा को अब बड़ी सड़क से जोड़ लें,

सहर के सूर्य की लाली सागर घट पार कर गयी।
आओ घर चलें साथी कितनी देर हो गयी।।

दूर पूर्व में चांद भी ऊंचा उठ रहा है,
कुटीरों के सुराखों से दीए का सांस हिल रहा है,

मंद मंद रोशनी बहुत कमजोर हो गयी।
आओ घर चलें साथी कितनी देर हो गयी।।

□□

महाउज्जास की कविता

श्रीमती कृष्णा गुप्ता के अब तक चारकाव्य संग्रह-उच्छ्वास् चिन्तन सुधा, दिव्य क्षण और इन्द्र धनुष प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कविताएं कामना, कर्म, अभिलाशा, प्रार्थना और राष्ट्र-प्रेम की कविताएं हैं, जिनमें कर्म और भाव की एकरूपता दिखाई पड़ती है। एक स्थल पर कविता में अगर जगहित के लिए कामना या अभिलाषा दिखाई पड़ती है तो दूसरे स्थल पर उद्देश्य पूर्ति के लिए वे कर्म संपादित करती हुई दीख जाती है।

कवयित्री की अभिलाषा अध्यात्म के स्तर पर शुद्ध और पवित्र है; भौतिकता के स्तर पर राग और प्रेम से भरा जीवन जीने की है। इस जीवन को जीने के लिए वे महाउज्जास की कामना करते हुए भौतिकता से ऊपर भी उठना चाहती हैं। वे आकाश पुष्प अर्थात् ब्रह्म को छूना चाहती हैं। उनकी दृष्टि में यही एक बिन्दु है जहां पहुंच कर भौतिक जगत में मन का सुख तलाश करने की यात्रा और आध्यात्मिक जगत में ब्रह्म को खोजने की यात्रा पूर्ण होती है। इस खोज-यात्रा की पूर्णता के लिए वे निर्विकार साधना को महत्त्व देती हैं। विकारों के दहन के लिए पराशक्ति से प्रार्थना करती हैं कि वह शक्ति कामदेव के आघात हर कर अपनी पवित्र ज्योति कवयित्री को प्रदान करे। केवल अपने लिए प्रार्थना नहीं करतीं वे तो चाहती हैं ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति को इतना ज्ञान प्रदान करे कि व्यक्ति काम का त्याग कर सके। परमात्मा से वे यही मांगती हैं कि वे त्रिविध वासना भूल जाएं। उनके भीतर एक छटपटाहट है कि उनकी तृष्णा कम नहीं हो पा रही और इसी तृष्णा के कारण वे कर्म श्रृंखला से बंधी हुई हैं।

सृष्टि के केन्द्र में स्थित जीवन क्या है? इस दर्शनिक प्रश्न का वेदांत और हठयोग सम्मत उत्तर उनकी कविताओं में उभरता है। परमात्मा की जो व्यक्त सत्ता है, जीव उसी सत्ता का अंश है:

> **निशा तम लटों का झुलाती है पलना**
> **कोई ओसकण की कली फूटती है**
> **उसी रूप की मुग्धता रश्मि मैं हूं।**

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 6)

कवयित्री की दृष्टि में जीवन महाज्ञानी और चलता-फिरता ब्रह्माण्ड है। सृष्टि के सभी तत्त्व इसमें दीप्यमान हैं। यह जीव तीन कालों में अशरीरी है और तीन लोगों में अमर। यह संस्कारों को साथ लेकर पुनर्जन्म लेता है। जीव को मृत्यु गति देती है और जन्म इसे भाषा देता है। जन्म और मृत्यु से जुड़ा जीवन कभी भीं मृत्यु के मूल तत्त्व से अलग नहीं होता।

एक ओर कवयित्री की कामना ब्रह्म से तादात्म्य की है और कामनापूर्ति की प्रतीक्षा की भी, दूसरी ओर उसके समक्ष कंचल और मादकता में डूबा संसार है। वे स्वंय से प्रश्न करती हैं कि वह किसका वरण करे। उनका प्रश्न, प्रश्न ही रहता है वह द्वन्द्व बनकर नहीं उभरता, क्योंकि वे ब्रह्म के समक्ष भौतिकता को अधिमान नहीं देतीं। विश्व की वस्तुओं का आकर्षण हमें बार-बार छलता है। कवयित्री जान गई है कि जिसे लोग जीवन कहते हैं वह खालीपन से भरी चकाचौंध है और वह इस चकाचौंध में खोना नहीं चाहतीं। उन्हें लगता है कि कोई एक पुकार उन्हें खोज रही है। वे स्वयं भी उसी पुकार की तलाश में हैं। बस प्रतीक्षा है तो केवल उस एक सुबह के उजाले की। ज्ञान का प्रकाश उन्हें उस आवाज तक पहुंचा देगा। कृष्णा गुप्ता का यह

मार्ग ऐसा नहीं है जिसके आरंभिक बिन्दु पर जो भी व्यक्ति है वह उस मार्ग पर चल कर अंतिम बिन्दु परमात्मा तक पहुंचेगा। इस मार्ग पर एक तरफ से चलकर अगर व्यक्ति परमात्मा तक पहुंचना चाह रहा है तो दूसरी तरफ से परमात्मा अपनी पुकार के माध्यम से कार्य तय कर रहा है।

अपनी इस आध्यात्मिक यात्रा में कवयित्री किसी के आश्रित होकर जीने में अपने को पराजित पाती है। प्रियतम के तन के बन्धन में बंध जाने के पश्चात् वे ज्ञान की किरणों की आहट पाकर सांसारिक बन्धनों से मुक्त होना चाहती हैं।

किसी भी साधक को अध्यात्म का रास्ता आरंभिक अवस्था में नीरस और कठिन लगता है। नीरसता और कठिनाई झेलने के पश्चात् साधक को जब उद्देश्य पूर्ति का कोई संकेत नहीं मिलता तो उसकी आस्था डगमगा जाती है। आस्था को बनाए रखने के लिए गुरु महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ब्रह्म तक पहुंचने के लिए समुचित सीढ़ी पर कवयित्री ने पहला कदम रख लिया है या उस मार्ग के पहले पड़ाव का अनुभव उसने कर लिया है, ऐसा कोई संकेत उनकी कविताओं से प्राप्त नहीं होता, लेकिन आस्था के डगमगाने की बात वे अवश्य करती हैं। ब्रह्म की ओर उन्मुख व्यक्ति की ब्रह्म का आस्था अडिग और अक्सर एकमुखी होती है क्योंकि ऐसा व्यक्ति भौतिकता से उदासीन ही होता है। कृष्णा गुप्ता जिस आस्था के डगमगाने की बात करती हैं, वह आस्था ब्रह्म के प्रति भी है और सांसारिक व्यवस्था के प्रतिं भी। अपनी डगमगाती आस्था के साथ वे जन्म, जीवन और मृत्यु अर्थात् ब्रह्म, जीव और भौतिकता का मिलन चाहती हैं जोकि असंभव है। अपनी बात को वे आस्थाएं डगमगाती हैं शीर्षक कविता में रूपक द्वारा स्पष्ट

करती हैं। इस रूपक में वे अपनी धारा के दोनों किनारों और धारा का मिलन चाहती हैं। वे इस असम्भव को अपने भीतर जीती हैं। वे अपने नयनों में धारा और हृदय में दोनों किनारों को अनुभव करती हैं और कल्पना के सहारे उस धारा को गति देती हैं।

जिस असम्भव को कवयित्री जी रही है उसके एक ओर ब्रह्म है तो दूसरी ओर संसार। ब्रह्म के प्रति झुकाव होते हुए भी कवयित्री को इस जगत के कर्म क्षेत्र में जीना है। वे इदस जगत में साधारण और छलावे वे भरा जीवन जीना नहीं चाहतीं। वे जीवन जगत की सेवा में बिताना चाहती हैं। हर दुःखी का सहारा बनना चाहती हैं। जगत के क्रन्दनों को अनसुना करके वे अपने लिए सुख की सेज नहीं सजा सकतीं। उनका मानना है कि व्यक्ति चाहे कितना ही छोटा है, जगहित कर्म करने की क्षमता को उसे बनाए रखना है। व्यक्ति को इस पथ पर अकेले ही चलना है। उसे इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि ऐश्वर्य में पले व्यक्तियों को उसकी आवश्यकता है या नहीं। बाधाएं जीवन में आती रहती हैं। बाधाओं के कारण के कारण जीवन की गति में ठहरावं नही आना चाहिए :

धूल देख कर कभी
कारवां रुके नहीं
धुन यहां हो बढ़ने की
कदम कभी थके नहीं

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 93)

परहित की अथक और कठिन यात्रा की सिद्धि के लिए उन्हें अपनी आंतरिक शक्ति पर अटल विश्वास है। वे जगत पर आश्रित न होकर अपनी भीतर के देवता पर आश्रित हैं, जो उन्हें प्रकाश पथ दिखाएगा। वे प्रबुद्ध होकर अपनी शक्ति जागृत करके अपना मार्ग स्वयं खोजने

और निर्धारित करने के पक्ष में हैं। वे दूसरों से सहायता की अपेक्षा नहीं करतीं। अपनी इस अकेली यात्रा में वे दूसरों के लिए जल प्लावन तक को रोकने की अभिलाषा करती हैं:

मेरा आंगन महानाश में
जलप्लावन को रोक सके
तूफॉनों में उलझे प्राणों को
निज संबल सौंप सके।

(उच्छ्‌वास पृष्ठ सं० 25)

वे ईश्वर से अटल विश्वास के लिए प्रार्थना करती हैं। उनकी प्रार्थना पांच तत्त्वों - जल, वायु, अग्नि, आाकाश और पृथ्वी से भी है कि वे सोम बनकर झरें, व्यक्ति की युगों-युगों की प्यास बुझाएं, उन्हें ज्ञान के प्रकाश से भर दें, चर-अचर सुकर्म में लगे और व्यक्तियों के हृदय महान हों।

कवयित्री का कहना है दुःख कहीं भी किसी को भी हो वह किसी भी व्यक्ति द्वारा दूर होना चाहिए।

कवयित्री यह मान कर चलती है कि व्यक्ति के स्वप्नों ने ही विश्व को प्रगति के पथ पर लाया है। ऐसे स्वप्नों को वे 'जागृत ज्योति' नाम देती हैं। आज की सारी वैज्ञानिक प्रगति के मूल में व्यक्ति का सुख-साधन जुटाने का स्वप्न ही हैं कवयित्री ने जग को सुखी बनाने के स्वप्न को आकार दिया :

कुलिश कुठार चला कर जग ने
जिन सुमनों का मान उछाला।
उनकी अरुणाभा को आंसू
तुहिन कणों से है धो डाला

(उच्छ्‌वास पृष्ठ सं० 58)

वे इस जग में व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने का उपक्रम करना चाहती हैं:

तार तार बांध बांध जोड़ दो पुलिन पुलिन
बिखरे मोतियों को बीन माल गांठते चलो
बांटने की यह प्रथा उन्मादिनी सी है कथा
प्रत्यावर्तन हर्ा का संभार बांठते चलो।
(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 46)

उन्हें यह चिन्ता सताती रहती है कि कहीं उनका यह कार्य अधूरा न रह जाए:

कदम सांस के ठिठक न जाएं
ज्योति दीप के जलने तक ।
(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 61)

X X X X X

कहीं अधूरे रह न जाएं
अंतिम पग के झरने तक।
(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 61)

कवचित्री के हृदय में गतिमान करुणा का स्रोत ही उसे पर दुःख हरने के प्रयत्नों में लगाता है। इस सारी कर्म श्रृंखला के साथ उसकी एक छोटी-सी लालसा है। यह लालसा है यश अर्जित करने की। 'उद्देश्य' कविता में वे कहती हैं :

तूफानों में उलझे प्राणों को
निज संबंल सौंप सकें।
ऐसे जी कर भाता है फिर
पत्तों जैसा झर जाना।

धरती के उजाले आंचल पर
नाम का मोती जड़ जाना।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 25)

कवयित्री का मार्ग कर्म का है। कर्म केवल अपने हित-स्वार्थ के लिए नहीं, दूसरों को उजाला देने के लिए। कर्म के कठिन मार्ग में वे दिन और उजाले की कामना करती हैं। रात्रि का महत्त्व तो उनके लिए श्रम से त्राण पाने के लिए है। कर्म मार्ग में वे थकना भी नहीं चाहतीं।

उनका कहना है कि कर्म के कारण ही हम आज के देवता हैं। सौभाग्य का विधान कर्म का विधान है। नए-नए आविष्कार कर्म के कारण ही सम्भव हुए हैं।

शोषण और अन्याय के प्रति कवयित्री का दृष्टिकोण मार्क्सवादी न होकर ममता से पूर्ण एक धार्मिक व्यक्ति का है। उनका कहना है कि व्यक्ति एक सीमा तक अन्याय सहता है। अन्याय सहन करते व्यक्तियों में जब जागृत उत्पन्न हो जाती है। तब उन्हें तूफान बनने से रोक पाना कठिन हो जाता है, इसलिए उनकी अवहेलना ठीक नहीं है। शोषितों को उनका हक देना ही होगा क्योंकि भारत मां के बेटे होने के कारण वे अपने ही बंधु-बांधव हैं :

इनका हक तुम इनको दे दो
फिर ही यह दोस्त बनेंगे अब।
यह भी अपनी भारत मां के
उतने ही अपने बेटे हैं।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 97)

इस प्रकार शोषितों के प्रति उनकी करुणा भूगोल के एक क्षेत्र तक सीमित रहती है, विश्वजनीन प्रसार नहीं हो पाता। कवयित्री का कहना

है कि जिन व्यक्तियों में अभी जागृति उत्पन्न नहीं हुई है, इससे पहले कि वे शो ाण और अन्याय का शिकार हो जाएं, हमें उन्हें अपनाना ही होगा।

जहां वे शोषितों को अपनाने की बात करती हैं, वही शोषितों और शोषकों का भेद समाप्त हो सके इसके लिए वे भगवान से प्रार्थना करती हैं:

शोषकों और शोषितों का भेद सम पर तोड़ दों,
तुम अटल विश्वास की बस एक खिड़की खोल दो।
(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 18)

जो व्यक्ति अभिशप्त हैं, जिनके लिए सभी द्वार बन्द हैं, उनके लिए भी कवयित्री की प्रार्थना है:

ऐ या खुदा कोई घड़ी दे उनके नसीब में,
जगा सकें ज़रा सी लौ निज अन्धेरे दीप में।
(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 106)

बेकार होने के साथ-साथ जो व्यक्ति बेघर हैं, उनकी दशा देखकर कवयित्री सोच में पड़ जाती है कि संसार का नियामक परमात्मा है या शैतान है। पूंजा स्थलों में विराजमान परमात्मा के प्रति वे व्यंग्य भाव को इस तरह व्यक्त करती हैं:

जो मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों, गुरुद्वारों में
सज-धज कर अभियान से बैठा है।
जो धड़ाधड़-धड़ाधड़ दौलत बटोर कर
दीन हीनों को शिकंजे में जकड़ा बैठा है।
(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 104)

कवयित्री उन व्यक्तियों पर भी व्यंग्य करती है, जो पैगम्बरों, अवतारों और उनके द्वारा लिखी पुस्तकों के सार तत्त्व को समझने की अपेक्षा उनकी पूजा को ही धर्म समझ कर स्वर्ग और मोक्ष की कामना करते हैं:

कभी-कभी आ जाते हैं गुरु अवतार पैगम्बर कोई
किताबें धर्म की लिख-लिख रख जाते हैं।
लोग उनको भी, किताबों की भी पूजा करते हैं।
इस तरह जिन्दगी के खोखलेपन को भरते हैं।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 105)

इस जीवन में जहां प्रेम है, रूप है, सौन्दर्य है, वहां जीवन कठिनाइयों से भी भरा है और भविष्य मनुष्य के हाथ में नहीं है। विडम्बना यह है कि जिस जीवन को हम जी रहे हैं वह भी बंटा हुआ है:

ज़िन्दगी कुछ वायदों
कुछ इन्तजारों में बंटी।
बंट चुकी है यह हवा
यह गूंज और यह रोशनी।
रूबरू हर रूह की
धड़कन मज़ारों में बंटी।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 86)

कवयित्री का यह अनुभव है कि जीवन में कितनी निराशा और पीड़ा क्यों न हो, व्यक्ति का मन सुख का कोई न कोई बिन्दु तलाश ही लेता है।

श्रीमती कृष्णा गुप्ता के काव्य की एक अन्य विशेषता है-अपनी माटी के प्रति प्रेम। उनका कहना है कि भारत के निवासी अपनी भू को अपने रक्त से सींचते हैं। भारत में शौर्य की कमी नहीं हैं। देश के लिए वीर सर्वस्व लुटा देते हैं। उनका राष्ट्र-प्रेम 'उच्छ्वास' के अतिरिक्त 'इन्द्र धनुश' में भी व्यक्त हुआ है, जिसका स्वर कहीं भारत के प्राचीन गौरव और वर्तमान दुर्दशा के सन्दर्भ में; कहीं उद्‌बोधन; कहीं जागृति; कहीं वीरों की कीर्ति-गाथा; कहीं आह्वान; कहीं आतंकवादियों के नाम; कहीं राष्ट्र-वन्दना और कहीं भारत की धरती के प्रति प्रेम के सन्दर्भ में है।

प्रकृति कृष्णा गुप्ता के हृदय को तृप्त करती है। वे स्वयं कहती है कि तृप्ति के क्षणों में उनका जीवन काव्यमय बन जाता है। वर्षा ऋतु की ओर उनका विषेश झुकाव है। इस ऋतु के प्रति अनुराग 'मन भावन सावन', 'पावस में', 'सावन की झड़ी', 'बरसात मन के घाट', 'बरसात में' और 'ऋतु आगमन' कविताओं में देखा जा सकता है। वर्षा ऋतु का एक चित्र है:

आकाश की उजली चादर पर,
बदली के काजल डोरों से,
आंकी है छवियों की लहरें
सूरज ने किरण कटोरों से।
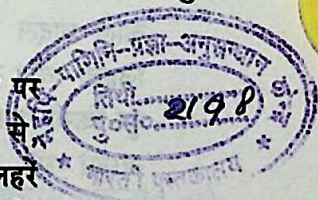
(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 82)

वर्षा ऋतु धरती पर सौंदर्य बिखेरती है, केवल इसलिए ही वह कवयित्री को प्रिय नहीं है। वर्षा का सम्बन्ध तो भूख मिटाने से है। वर्षा के कारण खलिहान भर जाएंगे, जिससे भूखों के भीतर नए प्राणों का संचार होगा:

खेतों में खलिहान भरेंगे,
भूखों के नवप्राण भरेगे।
नए-नए अभियान चलेंगे,
घर-घर सब जयगान करेंगे।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 70)

'बर्फानी सर्दी को विदा' कविता में बर्फ पिघली चुकी है, लेकिन फिसलन शेष है। धरती पुनः अंकुरित होने के लिए तैयार हैः

फिसल-फिसल जाते पल-पल पग,
संभल-संभल मग चलना।
हुई कंवारी चिकनी माटी,
नए बीज फिर भरना।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 72)

वर्षा ऋतु के अतिरिक्त कवयित्री ने सांझ और सूर्योदय के कुछ सुन्दर चित्र भी अंकित किए हैंः

काले बादल पक कर धवल हुए आंखें अंधियारी,
जिह्वा स्वाद खो बैठी टांगों का बोझ लग रहा भारी।
दूर किसी पहाड़ी नाले की, गाती ध्वनि मंद हो गयी,
आओ घर चलें साथी कितनी देर हो गयी।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 112)

X X X X X

दूर पूर्व में चांद भी ऊंचा उठ रहा है,
कुटीरों के सुराखों से दिए का सांस हिल रहा है,
मंद-मंद रोशनी बहुत कमजोर हो गई,
आओ घर चले साथी कितनी देर हो गयी।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 113)

नारी के ममत्व की चरमसीमा उसकी गोद में शिशु आने पर ही दिखाई देती है। शिशु के आते ही उसके जीवन का एक बडा स्वप्न साकार हो उठता है। एक मां किस प्रकार शिशु के साथ रात-रात जाग कर; स्वयं धूल बन कर और हृदय में उमंग लेकर समय बिताती है, इसका चित्रण इस प्रकार है:

नींद हुई कफूर रात जगमगा उठी,
वात्सल्यमयी गोद भरभरा उठी।
एक ओर ताज तख़्त है, ऐश्वर्य है,
एक ओर निष्ठा मूत भरा दोल है।
मां उमंग भरी दोल पर निसार है,
क्योंकि उसमें अपना रूप और प्यार है।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 41)

कृष्णा गुप्ता ने 'नव शिशु के प्रति' और 'शैशव' कविताओं में शिशु के आकर्षक चित्र प्रस्तुत किए हैं, जैसे :

मूक पर मुखर सुबोध,
घोल रही मधुर घोल।
शुभ्र शुभ्र कुंद कलोल,
जागी रागिनी अनाम।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 41)

X X X X X

घुटनों के, हाथों के बल,
शिशु ऐसे डग भरता है
जैसे वामन रूप में विष्णु
बलि राज़ा का उछला है।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 44)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कृष्णा गुप्ता की कविताएं महाउज्जास की कविताएं हैं। गहन अन्धेरे में वे एक किरण को पर्याप्त न मान कर प्रकाश के अजस्र स्रोत की कामना करती हैं। इन कविताओं में एक ओर अगर ब्रह्म से मिलने की स्वाभाविक कामना की गई है तो दूसरी ओर भौतिक जीवन को दूसरों के हित में समर्पित करके कर्म को अधिक महत्त्व दिया गया है। शोषितों और दीन-दुखियों के लिए बार-बार प्रकाश-पुंज की प्रार्थना और कामना करने के साथ-साथ कर्म सम्पादन को महत्त्व दिया गया है। इन कविताओं से कवयित्री को जो व्यक्तितत्व उभरता है, वह एक ममता और करुणा से भरी नारी का है जो अध्यात्म के पथ की ओर भी बढ़ना चाहती है। कवयित्री के ही शब्दों में उनके व्यक्तित्व की झलक मिल जाती है:

मैं दुलार भरी कल-कल गंगा
नेह नीर लेकर चलती हूँ।
अपने परिवेशों में फैले,
भ्रम तम आकुंचन करती हूँ।

(उच्छ्वास पृष्ठ सं० 66)

लेखक: डॉ. अशोक कुमार गुप्ता
प्रोफेसर हिन्दी डिपार्टमेन्ट
जम्मू और कश्मीर यूनिवर्सिटी
जम्मू (तवी)

लेखिका श्रीमती कृष्णा गुप्ता

पूर्व प्रकाशित पुस्तकें

1. मननधारा

2. चिन्तन सुधा

3. दिव्य क्षण

4. इन्द्र धनुष

और अब पूर्व प्रकाशित उच्छवास का द्वितीय संस्करण